इसलिए इसका जल सूखता नहीं। कुआं काफी गहरा है इसलिए बावड़ी और कुआं दोनों जल से परिपूर्ण रहते हैं। सीढ़ियों का उपयोग पानी बाहर ले जाने के लिए किया जाता था।

कुएं का इतिहास जानने के लिए क्षेत्र का इतिहास जानना आवश्यक है। देश के अन्य इतिहास की भांति यहां का इतिहास भी क्रमबद्ध एवं लिखित रूप में नहीं मिलता। जनश्रुतियों एवं इतिहास की कड़ियां जोड़ने पर जो सामने आता है वह कुछ इस प्रकार है:

लगभग 1185 ई. का समय रहा होगा। दिल्ली पर पृथ्वीराज चौहान का शासन था। तो यहां की रियासत थी माखनपुर और राजा थे महाराज सम्बर अथवा सम्भर। इनकी एक पुत्री पृथ्वीराज चौहान की पत्नी हुई। इस प्रकार माखनपुर (आज भी यह क्षेत्र माखनपुर के नाम से प्रसिद्ध है) पृथ्वीराज की ससुराल थी। इसी के समीप एक गांव है सम्भल हेड़ा जो राजा सम्भर के नाम पर सम्भल खेड़ा नाम से प्रसिद्ध हुआ और अपभ्रंश होकर संभल हेड़ा बन गया।

राजा सम्भर के पश्चात् उनका बेटा रामचन्द, राजा बना। पंजाब में स्थायी निवास कर चुके सैय्यद हसन फखरूद्दीन पंजाब से पटियाला होते दिल्ली जाते समय अपने दोस्त रामचंद्र के यहां ठहरते। रामचंद्र की मृत्योपरान्त उनकी एक महारानी को सम्भर के मित्र सैय्यद भाईयों ने बहका-फुसला कर राज्य को अपने आधीन कर लिया। कुछ वर्षों बाद आपस में तकरार होने पर राज्य को सैय्यद भाईयों ने आपस में बांट लिया जो बारह सादात (सैय्यद भाईयों की जायदाद या सैय्यदों की सादात) के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनमें मीरापुर, जानसठ, कवाल, टिस्सा, सालारपुर, मुंझैड़ा (माखनपुर) एवं सम्भल खेड़ा आदि 85 मुख्य गांव थे। इनमें माखनपुर या मुंझैड़ा के मालिक सैयद महमूद हसन तात्कालीन दिल्ली बादशाह रोशन अख्तर उर्फ मुहम्मद शाह रंगीला के सेनापति अथवा मुख्य सलाहकार आदि थे जो किसी बात पर बादशाह से नाराज होकर अपने घर आ गये थे।

1739 में फारस के दुर्दान्त डाकू-लुटेरे नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला करके लूट-खसोट के द्वारा दिल्ली को धूल धूसरित कर दिया और 70 करोड़ रु. की सम्पत्ति, तख्ते ताऊस एवं कोहिनूर हीरा लूट कर ले गया। दिल्ली दरबार एवं सेना की ओर से महमूद हसन का नाम नादिरशाह के सामने बार-बार उछाला गया तो नादिरशाह ने महमूद हसन को मिलने के लिए बुलावा भेजा। महमूद हसन ने मिलने के लिए दो शर्तें रखीं, पहली यह कि वह दाढ़ी नहीं कटायेगा, दूसरी अपने बादशाह के अलावा किसी को सलाम नहीं करेगा। शर्तें स्वीकार होने पर महमूद हसन नादिरशाह से मिला। नादिरशाह ने उसकी वीरता के विषय में जानना चाहा तो महमूद ने पृथ्वी पर एक रेखा खींच कर कहा कि इसे दरिया (नदी) मान लें। दोनों युद्ध करें जो अपनी ओर खींच लेगा वही विजेता माना जायेगा। हार जीत का फैसला यहीं हो जायेगा। नादिरशाह तैयार नहीं हुआ।

यह कुआं राजा सम्भर ने बनवाया था। यहीं पर सम्भर की गढ़ी थी। ऐसी ही एक गढ़ी बामनौली-जानसठ में ब्राह्मणों की बनी हुई है। दोनों का एक जैसा निर्माण बताता है कि दोनों हिन्दू इमारतें थीं और बनाने वाला कारीगर भी एक था। गढ़ी में पानी का वितरण इस कुआं-बावड़ी से ही होता था। बाद में इस पर महमूद हसन का कब्जा हो गया। माखनपुर और गढ़ी उजड़ गई। माखनपुर के कुछ निवासी तो मुझैड़ा में बस गये, कुछ मुसलमान हो गये और कुछ इधर-उधर चले गये। महमूद हसन मर गया तो उसका मकबरा बनाया गया। कुएं के समीप बने मज़ार और कब्रें महमूद शाह व उसके सगे सम्बन्धियों की हैं। इस क्षेत्र में आज भी 53 प्राचीन कुएं बताये जाते हैं। लेकिन वे छोटे हैं। यह कुआं नहीं बल्कि बावड़ी है।

सन्दर्भ - (जानसठ के शाही परिवार से सम्बन्धित एवं वंशीय विद्वान स्व. नवाब अकबर अली खां एवं महमूदपुर के नवाब स्व. सैयद अली हसन साहब से पहले श्री ऋषिदेव शर्मा अध्यापक (जानसठ) की बातचीत एवं 'तारीखे-आईना' पर आधारित)।

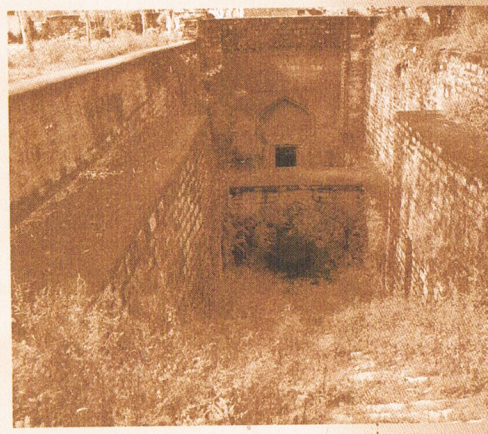

मुजफ़्फरनगर जनपद के मुझैड़ा गांव में स्थित प्राचीन बाय वाला कुआं

हास कुण्ड

मुजफ़्फरनगर-मीरापुर मार्ग पर जानसठ से एक सम्पर्क मार्ग मोरना-भोपा-खुजैड़ा आदि को गया है। इसी मार्ग पर गांव ककरौली में है सैय्यदों की तीन-चार गढ़ी, दो-चार मृत कुएं और एक तालाब। तालाब एवं उसके किनारे पर बनी गढ़ी को कहा जाता है 'हास कुण्ड'। यद्यपि किसी समय गढ़ी एवं तालाब भव्य रहा होगा लेकिन अब तो दोनों खण्डहर मात्र रह गये हैं। क्या है ककरौली का इतिहास और क्या है हास कुण्ड?

ककरौली के समीप के गांव बिमला खेड़ी में काकरान गोत्रीय जाट रहते थे जो राजाशाही युद्धों के कारण सहारनपुर (बिजनौर) चले गये। कुछ व्यक्ति इतिहास के संदर्भ से इन्हें भरतपुर गया हुआ बताते हैं। आगामी पीढ़ी के किसी नवयुवक को अपने पैतृक स्थान का ज्ञान होने पर वह अपने कुछ समाज के साथ पुनः इस क्षेत्र में बसने के लिए आया। गांव आबाद होने पर यहां कुछ कटारिया गुर्जर भी आकर रहने लगे। काकरान एवं कटारिया के कारण गांव का नाम ककरौली रखा गया।

हुमांयू कें शासन काल में (सन् 1555 ई. के लगभग) में सैय्यद उमरनर पुत्र ताजुद्दीन पुत्र सैय्यद इब्बन को यहां की ज़मींदारी या ज़ागीर मिली तो उन्होंने एक गढ़ी का निर्माण कराया। हास कुण्ड (तालाब) के किनारे निर्माण होने के कारण गढ़ी को भी हास कुण्ड कहा जाने लगा। लेकिन यह हास कुण्ड न तो पूर्ववर्ती जाटों ने ही बनवाया और न सैय्यदों ने, तो फिर किसने निर्माण कराया हास कुण्ड का, जबकि यह प्राकृतिक भी नहीं है। इसका नाम हास कुण्ड क्यों पड़ा? क्या अर्थ है हास कुण्ड का?

यह तो सर्वविदित है कि यह समस्त क्षेत्र कुरुवंशीय राजधानी हस्तिनापुर का था या उसके एकदम समीप था। आज जिस प्रकार प्रशासनिक कार्यालय दूर-दूर अथवा मुख्य शहर से बाहर होते हैं उसी प्रकार राजाओं के प्रयोग में आने वाले भिन्न-भिन्न स्थान भी आवश्यकतानुसार दूर-दूर होते थे। कहीं शिकारगाह, कहीं मनोरंजन स्थल, कहीं जुआघर, कहीं पुरुष स्नान तालाब तो कहीं महिला स्नान तालाब आदि। कहीं सुन्दर-सुन्दर बाग-बगीचे तो कहीं तालाब और पार्क। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार यह तालाब अत्यधिक विस्तृत बगीचों एवं पार्क-युक्त था। तालाब में हंस एवं इसी प्रजाति के अन्य दुर्लभ पक्षी पाले जाते थे। यह स्थान विशेष रूप से कुरुवंशीय महिलाओं के लिए था। यहां आकर रानियां मनोरंजन-स्नान, उन्मुक्त विचरण एवं हास-परिहास किया करती थीं। कभी-कभी यहां पुरुष वर्ग भी स्वयं को तरोताजा करने के लिए आ जाते थे। हंसों के कारण यह तालाब 'हंस-कुण्ड' तो हास-परिहास के कारण यह 'हास्य (हास) क्षेत्र' कहलाता था। धीरे-धीरे यह तालाब 'हास कुण्ड' के नाम से जाना जाने लगा। कहा जाता है कि किसी समय दुर्योधन ने भी इसी स्थान पर द्रौपदी को हास्य में 'पांच पुरुषों की पत्नी' कह दिया था, जिसका उत्तर द्रौपदी ने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के महल में दुर्योधन को 'अंधे की औलाद अंधी' कह कर दिया था। दोनों हास्य वाक्य ही महाभारत युद्ध का कारण बने।

यही है वह 'हास कुण्ड'। ककरौली में ही कई विशाल कुओं के भी अवशेष हैं।

टन्ढेड़ा के तालाब

गत पृष्ठों पर लिखित ककरौली (हास कुण्ड) से लगभग तीन किलोमीटर मीरापुर की ओर गांव टन्ढेड़ा में निम्न चार तालाब हैं।

1. मानक वाला तालाब : इसके समीप पहले में नट जाति की बस्ती होने के कारण यह नट वाला कहा जाता था। बाद में मानक वाला नाम पड़ा। अब इसके समीप एक ओर बाल्मीकी बस्ती व दूसरी ओर एक मज़ार एवं देव स्थान है।
2. माता वाला तालाब : यहां पर माताएं बनी हुई हैं। यह माता मठ प्राचीन है, तालाब समाप्त हो चुका है।
3. देवता वाला तालाब : इसके तट पर हिन्दुओं के पितृ स्थान (देवता) बने हैं।
4. पुजाया वाला तालाब : पंझाया का अपभ्रंश है पुजाया। यहां पर ईटें बनाई जाती थी।

यूं तो चारों तालाब ऐतिहासिक हैं लेकिन इन अतिक्रमित तालाबों को वर्तमान में छोटे जोहड़ या कीचड़ के गड्ढे कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। क्या है इनकी प्राचीनता? टन्ढेड़ा के पूर्व गांव प्रधान सैय्यद जहूद मेहंदी पुत्र शमीमुल हसन के अनुसार यह ग्राम कुषाण कालीन है। उस समय यहां पर चौहान बंजारे निवास करते थे। राजनैतिक सत्ता परिवर्तन एवं आये दिन हमलों के कारण बंजारे इस स्थान को छोड़कर कहीं दूर जा बसे तो गांव उजाड़ हो गया। सन् 1414 ई. में सैय्यद वंश की सत्ता स्थापित होते ही सैय्यदों को जागीरें दी गईं तो सैय्यद हिसामुद्दीन ने टन्ढेड़ा को आबाद किया। गांव प्रधान जहूर मेहंदी इन्हीं के वंशज हैं। इन्हीं के एक पूर्वज सैय्यद मौहम्मद हसनैन डी. एस. पी. (सी. आई.) पुत्र ज़ियाउल हसन ने सन् 1930 में यहां एक कोठी का निर्माण कराया था।

ग्रामीण जानकारी के अनुसार यह स्थान ध्वस्त गांव खेड़ा के नाम से जाना जाता था तथा गांव से बाहर जंगल में शेष गांव से ऊंचा स्थान था इसलिए इनके पिता ने यहां कोठी निर्माण को मना किया था लेकिन डी. एस. पी. साहब नहीं माने और कोठी का निर्माण यहीं कराया। खुदाई के मध्य यहां अनेक महाभारतकालीन अवशेष प्राप्त हुए। ऐसे अवशेष इसके समीप अन्यत्र प्राप्त नहीं होते। इसलिए यह स्थान महाभारतकालीन प्रतीत होता है। सन् 1988 में गोबर गैस संयंत्र के लिए गड्ढे की खुदाई में एक शिवलिंग जैसा पत्थर एवं एक शिलालेख भी निकला था परन्तु गृह स्वामिनी ने किसी शंका वश उसे नष्ट या गायब कर दिया। पुरावशेषों के प्रति हमारी निर्मूल शंकाएं इतिहास को कहां से कहां ले जाती हैं इसका ज्ञान न जाने हमें कब होगा? महाभारतकालीन बड़ी ईटें एवं बर्तनों के टुकड़े (टेरा कोटा) यहां अक्सर खुदाई में प्राप्त होते रहते हैं। कोठी के चारों ओर मालिकों की कृषि भूमि है। सिंचाई करते समय पानी एक खेत में चलता है तो दूर दूसरे खेत में उबलने लगता है। कभी-कभी किसी एक खेत के किसी छिद्र में जाने लगता है तो घण्टों तक वहीं चलता रहता है, आगे जाता ही नहीं। क्या नीचे कुछ इमारतें दबी होने के कारण भूमि में खोखलापन है? इसकी जांच अनेक पुरातात्विक रहस्यों को प्रकट कर सकती है।

ज़हूर मेहंदी के अनुसार महाभारत काल में यह स्थान हस्तिनापुर शुक्रताल मार्ग पर था इसलिए परीक्षित को श्रीमद्भागवत सप्ताह सुनाने शुकदेव जी एवं महर्षि व्यास जी इसी मार्ग से शुक्रताल गये थे। कुछ लोगों के अनुसार मीरापुर बबरे वाली से लेकर यहां तक बरबरीक (या बभ्रुवाहन) की छावनी फैली थी। हमारे विचार से -

1. यह महाभारत काल में व्यापारिक केंद्र था जो कुषाण काल में भी बंजारों का आवास बना रहा।

2. कुरु-पाण्डु वंशियों की व्यायाम शाला थी जिसके कारण इसे डंड शाला डन्ढेड़ा और बाद में टन्ढेड़ा कहा जाने लगा।

3. यहां अपराधियों की दण्ड शाला बनी थी जो अपभ्रंश होकर टन्ढैड़ा बनी।

4. कुरुवंशियों का एकान्तवास का स्थल था जो मुगल काल में तन्हां-तन्हाई-तन्हैड़ा से टन्ढेड़ा बन गया।

हो कुछ भी, लेकिन अवशेष इसे महाभारतकालीन सिद्ध करते हैं। इसके प्रथम तीन तालाब महाभारतकालीन अथवा कुषाण कालीन बंजारों द्वारा निर्मित हैं जबकि चौथा पुजाया तालाब सैय्यद हिमायत अली द्वारा सन् 1802 ई. में निर्मित है।

टन्ढेड़ा के समीप ही मोरना नामक गांव वह स्थान है जहां कश्यप नामक ब्राह्मण एवं तक्षक की भेंट हुई थी।

श्रीमद्भागवत एवं महाभारत के अनुसार शृंगी ऋषि के शापवश तक्षक परीक्षित को डसने के लिए जा रहा था तो मार्ग में उसे सर्प विष चिकित्सा करने में निपुण कश्यप नामक ब्राह्मण मिला। तक्षक नाग ने कश्यप की परीक्षा हेतु अपने विष से एक ऐसे हरे-भरे वृक्ष को जला कर राख बना दिया जिस पर एक लकड़हारा लकड़ियां भी काट रहा था। कश्यप ने अपनी विद्या से लकड़हारे सहित वृक्ष को पुनः पूर्व स्थिति में ला दिया। तक्षक ने कश्यप को भूमिगत धन बता दिया। कश्यप शृंगी श्राप की लाज रखने हेतु धन लेकर वापस हो गया। तक्षक द्वारा कश्यप को वापस मोड़ने के कारण ही इस स्थान का नाम मोड़ना या मोरना पड़ा। तक्षक ने तब जाकर परीक्षित को डसा। यह स्थान पूर्व में भेंट खेड़ा के नाम से प्रसिद्ध था जो अपभ्रंश होकर बेड्डा हेड़ी बन गया। यहां पहले एक पुलिया भी बनी थी।

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना।
हन्तुकामो नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम्।।
तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम्।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम्।।

(श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध, अध्याय छ श्लोक 11-12)

उस स्थान पर अब कुछ माता-मठ से बने हैं।

सन् 1398 ई. में तुगलक वंश को समाप्त करते हुए स्वयं तैमूर लंग ने यहां आकर तुगलक की छावनी तुगलकपुर-कम्बेढ़ा को समाप्त किया। साथ ही भोपा आदि के हिन्दुओं का कत्ले आम करके शुक्रताल के कच्चे किले को समाप्त किया। उसी समय अरबी बादशाह बायज़ीद खां यलदरम विश्वविजय अभियान पर निकला था। फ्रांस-इटली-मोरक्को आदि को फतह करके यलदरम इंगलिश चैनल पहुंचा तो ईसाई संगठित हो गये। यलदरम ने तैमूर को अपनी सहायता के लिए बुलावा भेजा। तैमूर वहां गया और यलदरम को ही गिरफ्तार कर लोहे के पिंजरे में बंद कर दर-दर घुमाया। उसे तड़प-तड़प कर मरने पर विवश किया। खिज्र खां ने सहारनपुर-मुजफ्फरनगर-मीरापुर आदि का शिकदार सैय्यद इखत्यारूदीन (कुण्डली वाले) को नियुक्त किया।

मीरापुर के तालाब

मेरठ-बिजनौर मार्ग पर स्थित मीरापुर किसी समय कुरुवंशीय राजधानी हस्तिनापुर का ही एक भाग था। हस्तिनापुर अपने मुख्यालय से मवाना-बहसूमा-खरकाली की ओर अधिक फैला था जबकि मीरापुर-जानसठ की ओर कम। मीरापुर के तालाबों के विषय में जानने से पूर्व उनकी पृष्ठभूमि जानना अत्यावश्यक है। इसके लिए हस्तिनापुर के इतिहास की संक्षिप्त एवं सारगर्भित चर्चा करना आवश्यक है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर हस्तिनापुर का संबंध सिन्धु घाटी सभ्यता से भी प्राचीन 'नर्मदा

घाटी सभ्यता' से सिद्ध हो चुका है। नर्मदा घाटी सभ्यता गुजरात के महिष्ठमती (महेश्वर, मध्य प्रदेश) से गंगा एवं हस्तिनापुर तक फैली थी।

अति प्राचीन ग्रंथों के अनुसार पुरूवंश को समाप्त कर हस्तिनापुर पर नाग जाति ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। कई शताब्दियों पश्चात् अनुवंश के चक्रवर्ती सम्राट मरुत ने पुरू के वंशज दुष्यंत का पालन-पोषण किया। दुष्यंत ने नागों से पूर्वजों का शासन छीन कर हस्तिनापुर की नींव रखी। दुष्यंत से शकुन्तला ने भरत को जन्म दिया। महाभारत के अनुसार कुरुवंश के शक्तिशाली सम्राट हस्तिन ने हस्तिनापुर की नींव रखी। हस्तिनापुर को गजाह, गंजपुरा, हस्तिग्राम तथा कुंजरपुर भी कहा जाता था क्योंकि यहां के वनों में हाथियों की बहुलता थी। इसी प्रकार नागवंश के प्रभाव के कारण इसे नाग सहाय, नाग शाह व नागपुर आदि नाम से पुकारा जाता था तो मुख्य राजनैतिक केंद्र होने के कारण इसे राजपुर, रायडर, मयपुर, गयनपुर, शांतिनगर, आसन्विद तथा ब्रह्मस्थल भी कहा जाता था।

सन् 1950 ई. में भारतीय पुरातत्व एवं सर्वेक्षण विभाग के निदेशक डा0 बी0 बी0 लाल के निर्देशन में कराई गई खुदाई में प्राप्त महाभारतकालीन अवशेष रोपड़ से प्राप्त अवशेषों के समान हैं। जिससे सिद्ध हुआ है कि यह नगर कम से कम चार बार उजड़ा एवं बसा है। पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर ई. पू. 10वीं-12वीं शताब्दी में प्रथम बार हस्तिनापुर गंगा में विलुप्त हो गया था। दूसरी बार परीक्षित की छठी पीढ़ी के राजा विपक्षु (ऋक्षक) के शासनकाल में टिड्डियों ने फसलें चौपट कर अकाल फैला दिया तो गंगा ने नगर बहा दिया। विपक्षु राजधानी को कौशाम्बी ले गया। हस्तिनापुर पर नागों ने अधिकार कर लिया। यह ई. पू. 300 वर्षों तक रहा। तीसरी बार बिन्दुसार के शासनकाल में यह नगर भीषण अग्निकाण्ड में राख हो गया और सत्ता संचालन का केंद्र मेरठ हो गया। पुनः इसे सम्राट अशोक के पौत्र जैन सम्राट संप्रति ने आबाद किया। ई. पू. 200 वर्षों तक आबाद रहने के पश्चात् पुनः नष्ट हो गया। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में इसे भरतवंशी राजा हरिदत्त ने पुनः आबाद किया जो चौदहवीं शताब्दी तक आबाद रहा। ई. पू. चौथी शताब्दी के मध्य नन्द सम्राट महापद्म ने कुरुवंश को पराजित कर समस्त कुरु राज्य का नंद साम्राज्य में विलय कर लिया। बाद में समस्त नंद राज्य पर मौर्यवंश का आधिपत्य हो गया।

अकबर के शासन काल में यह समस्त क्षेत्र दिल्ली शासन में था। अनेक राजवंशों के अधिकार में रहने के पश्चात् सन् 1748 में यहां का शासक जैत सिंह नागर (गुर्जर) बना और राजधानी परीक्षितगढ़। सन् 1780 ई. में जैत सिंह के दत्तक पुत्र कुंवर किशन सिंह राजा बने लेकिन सत्ता संचालन जैत सिंह के सेनापति खेमकरण शर्मा के हाथ में रहा। महाराजा पटियाला की सहायता से इसे मार कर नैन सिंह यहां के राजा बने। नैन सिंह के पश्चात् उसका पुत्र नत्था सिंह राजा बना जिसकी मृत्यु सन् 1833 ई. में हुई और यह रियासत नत्था सिंह के दामाद कुंवर खुशहाल सिंह ने लण्ढौरा में विलय कर दी। सन् 1857 ई. में नैन सिंह परिवार के स्वतंत्रता सेनानायक कुंवर कदम सिंह को अंग्रेजों ने फांसी देने के साथ ही परीक्षितगढ़ स्थित महल को नष्ट कर दिया और हस्तिनापुर सहित समस्त क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। इस प्रकार हस्तिनापुर के साथ नियति ने बार-बार मजाक किया है। इसी हस्तिनापुर का एकमात्र बचा रहा है मीरापुर। अब हम पुनः मीरापुर चलते हैं। मीरापुर एक ऐसा बहु उपयोगी विशाल मैदान था जिसके एक ओर तो गंगा के किनारे शुक्रताल से भी आगे तक विशाल वनखण्ड था तो दूसरी ओर हस्तिनापुर एवं उससे आगे जानसठ के आस-पास के क्षेत्र में कौरव-पाण्डवों के विहार एवं द्यूत स्थल आदि बने थे। इस प्रकार यह मैदान चारों ओर से सुरक्षित था। इसका उपयोग खेल, मनोरंजन, यज्ञ एवं राजसी उत्सवों के लिए किया जाता था। यहां शाल वृक्षों की बहुतायत थी।

मीरापुर में इस समय छः प्रसिद्ध स्थान हैं-

1. भंराई वाला तालाब।
2. खान वाला तालाब ।
3. कच्चा-पक्का तालाब।
4. जामन वाली तालाब।
5. बबरे वाली शीतला माता मन्दिर ।
6. योगमाया मन्दिर।

ऐतिहासिक दृष्टि से ये सभी स्थान अति महत्वपूर्ण, प्राचीन एवं एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इनका इतिहास पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ से प्रारम्भ होता है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद भगवान कृष्ण के परामर्शानुसार युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ करने हेतु यज्ञ भूमि के चयनार्थ भीम को भेजते हैं। भीम इस भूमि को पसन्द करते हैं।

तौ ययौ भीमसेनः प्राज्ञैः स्थपतिभिः सह।
ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान यज्ञकर्मणि।।

(महाभारत अश्वमेधपर्व अध्याय 85 श्लोक 11)

अर्थात् "तत्पश्चात् युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर भीम सेन यज्ञ कुशल ब्राह्मणों को आगे करके कुशल शिल्पियों (वास्तुविद्रों) के साथ नगर से बाहर गये।"

तं स शालचयं श्रीमत् सप्रतोली सुधट्टितम्।
मापयामास कौरव्या सज्ञवाटं यथाविधि।। (श्लोक 12)

उन्होंने शाल वृक्षों से भरे हुए सुन्दर स्थान को पसंद कर चारों ओर से नपवाया। तत्पश्चात् भीम ने वहां उत्तम मार्गों से सुशोभित यज्ञभूमि का विधिपूर्वक निर्माण कराया।

कौन्तेयो विधिवत् तान्यनेकशः ।। 6।।

कुन्तीकुमार भीम ने शिल्प शास्त्र की विधि के अनुसार यज्ञशाला का निर्माण कराया।

तेशां निविशतां तेषु शिविरेषु महात्मानाम्।
नर्दतः सागरस्येव दिवस्पृगभवत् स्वतः ।। (श्लोक 19)

वहां बने हुए विभिन्न शिविरों में प्रवेश करने वाले राजाओं का कोलाहल समुद्र की गम्भीर गर्जना के समान सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त हो रहा था अर्थात् अत्यधिक भीड़ थी।

अश्वमेध पर्व में इस यज्ञशाला का अतीव सुन्दर वर्णन किया गया है। 35 वें श्लोक में कहा गया है कि 'यह यज्ञशाला पशु, गऊ, धन-धान्य आदि की दृष्टि से सम्पन्न एवं आनन्द बढ़ाने वाली थी। देखकर राजाओं को अति विस्मय हुआ।'

यहां प्रतिदिन एक लाख व्यक्तियों को बार-बार डंके की चोट से (ध्वनि) बुलाकर भोजन कराया जाता था। तात्पर्य यह है कि मीलों में फैले हुए इस आयोजन हेतु, मनुष्यों एवं पशुओं के लिए पानी की महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए यज्ञशाला के चारों कोनों में चार तालाब बनवाये गये तो धनादि की कमी न आ पावे, किसी प्रकार की माया का प्रभाव न हो, किसी कृत्या आदि का दुष्प्रभाव न पड़े इसलिए महामाया योगमाया की स्थापना भी की गई, जबकि बबरे वाली शीतला माता पहले से ही स्थापित थी। यज्ञशाला के वास्तु के अनुसार यज्ञशाला के चारों ओर दशों दिशाओं के स्वामियों दशदिक्पालों की स्थापना भी की जाती है। यद्यपि महाभारत के अश्वमेध पर्व में यज्ञशाला के वास्तुशास्त्री का नाम नहीं है लेकिन पूर्व दृष्टांतों को दृष्टिगत करते हुए निश्चय ही यज्ञशाला का निर्माण मयदन्त अथवा मयदानव ने किया होगा। सम्भवतः इस कारण बाद में इसका नाम मय नगर या मयरापुर जैसा कुछ पड़ा होगा जो बाद में मीरापुर हो गया। कृष्ण भक्त मीराबाई भी अपने आराध्य की कर्मभूमि देखने यहां आई थी। उस काल की लगभग 25 हवेलियां आज भी यहां हैं। इसीलिए इसका नाम मीरापुर पड़ा जबकि कुछ लोग इसे मीर नामक सैय्यद द्वारा बसाया हुआ बताकर मीरापुर नाम सिद्ध करते हैं। राजवंश (राजवंशी वैश्य) समाज के प्रवर्तक राजा रतन चन्द का जन्म फरवरी सन् 1665 ई. को मीरापुर में ही हुआ था। रतन चन्द सन् 1712 ई. से 1720 ई. तक भारतीय राजनीति के आकाश पर छाये रहे थे।

आइये इन तालाबों पर पृथक-पृथक रूप से दृष्टिपात करते हैं।

भंराई वाला तालाब एवं बबरे वाली

मीरापुर के उत्तर पश्चिम (NW) कोण में स्थित है यह विशाल तालाब। यहां भैरों बाबा, हनुमान, शिव मन्दिर एक कुआं एवं एक कुण्ड भी है। कुण्ड में दो तरफ सीढ़ियां बनी हैं। बुजुर्ग बताते हैं कि इस कुण्ड का पानी पिया भी जाता था। अब विशाल तालाब भी इस कुण्ड से ही सम्बद्ध है। इसके पास ही रसूलपुर में वाराही देवी का मन्दिर है जहां पर नवरात्रियों में मेला लगता है। वाराही एवं मेला भराई के कारण ही इसे भंराई (वाराही का अपभ्रंश) वाला तालाब कहते हैं। चूंकि वायव्य कोण का स्वामी वायु माना जाता है इसलिए यहां हनुमान की स्थापना की गई थी जबकि क्षेत्रपाल होने के कारण भैरों की और दोनों का अधिपति होने के कारण शिव की, यह सब अश्वमेध यज्ञ के समय हुआ। पशुओं के लिए बड़ा तालाब तो मनुष्यों के लिए कुण्ड का निर्माण किया गया। कालचक्र से गुजरता हुआ यह ध्वस्त होने लगा तो मराठों ने इसका जीर्णोद्धार कराया। चारों ओर ऊंची-ऊंची बुर्जियां बनवाई जिनमें से एक आज भी अपनी पूर्व स्थिति में है। एक बारहादरी का (12 द्वार वाला बरामदा) का निर्माण कराया एवं मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। कुछ समय पश्चात् सन् 1700 ई. के आस-पास यह मीरापुर के लाला केसरीमल के ज़मींदारी अधिकार में आ गया।

इस तालाब से बबरे वाली मन्दिर के चारों ओर के क्षेत्र को बबरा कहा जाता है। कुछ लोग इसे भीम के पौत्र एवं घटोत्कच के पुत्र बरबरीक की साधना स्थली मानते हैं तो कुछ अर्जुन पुत्र बभ्रुवाहन की। हमारे विचार से यह बरबरीक की साधना स्थली है। अस्तु, बबरे वाली शीतला माता इन्हीं की आराध्या देवी थीं। कुछ लोग इसे बरबरीक (या बभ्रुवाहन) की छावनी भी मानते थे। कुछ भी हो इतना अवश्य है कि इनमें से किसी भी वीर की यह कर्मस्थली या तपस्थली अवश्य रही है। भैरों का मन्दिर यहां की सिद्ध पीठ मानी जाती है। दुल्हेण्डी को यहां मेला लगता है। भराई वाले तालाब की अधिकांश भूमि पर अतिक्रमण हो चुका है और शेष पर हो रहा है। परन्तु समाज-गांव-सरकार एवं ट्रस्ट सभी इस ओर से आंखे मूंदे हैं।

मुजफ़्फरनगर जनपद के मीरापुर में स्थित महाभारत कालीन भंराई वाला तालाब

खान वाला तालाब

किसी भी क्षेत्र का ईशान कोण (NE) अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं शुभ होता है। इसलिए इस कोण में भगवान कृष्ण का शिविर बनाया गया। ग्रामीण भाषा में यह किशन का ठौर कहा जाने लगा जो अपभ्रंश होकर बाद में किथौड़ और किथौड़ा हो गया। यह मीरापुर से सटा है और यहीं पर है खानवाला तालाब एवं शिवमन्दिर। यह तालाब भी लगभग एक सौ बीघा का है। यहां शिव, राधा-कृष्ण एवं गंगा मन्दिर हैं। किथौड़ा ग्राम राजपूत बाहुल्य का था परंतु औरंगजेब काल में इसे मुस्लिम बना दिया गया। इस स्थान पर तालाब के किनारे एक अष्टकोणीय मन्दिर था जिसकी प्रतिमा पहले ही गायब कर दी गई थी। इस पर अधिकार करने की चेष्टा से नव-मुस्लिमों ने इसे तोड़कर अपना मकबरा बनाने का प्रयत्न किया तो एक खान ने आकर उन्हें ललकारा। इस पर मुसलमानों ने उसे अपना भाई बताकर अपने में मिलाने का प्रयत्न किया परन्तु उसने कहा कि वह सिर्फ खान कहलाने से ही मुस्लिम नहीं हो गया। खान का तलब मुस्लिम नहीं होता बल्कि कान्धार का रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति खान कहलाने का अधिकार रखता है। मैं मुसलमान नहीं बल्कि हिन्दू हूं। उस खान ने कहीं से एक काला पत्थर शिवलिंग उठाकर उस अष्ठकोणीय इमारत में स्थापित करके शिव मन्दिर बना दिया। तब से यह स्थान खानवाला के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कच्चा-पक्का तालाब

मुजफ़्फरनगर जनपद के मीरापुर में स्थित कच्चा-पक्का तालाब के निकट मौजूद प्राचीन कुआं

मीरापुर से दक्षिण-पश्चिम में है कच्चा-पक्का तालाब। लगभग एक सौ बीघे में फैला, दो भागों में बंटा, कच्चा-पक्का तालाब एवं बीच में शिव मन्दिर। इनमें से एक मन्दिर का शिवलिंग लगभग 400 वर्ष पुराना है तो दूसरे मन्दिर का निर्माण संवत् 1994 (सन् 1937 ई.) में हुआ है। यह भी यज्ञशाला के समय का निर्मित तालाब है। चूंकि यह चारों ओर से पक्का था फिर अतिक्रमण से टूट-फूट के कारण कहीं कच्चा हो गया तो कहीं पक्का रह गया। इसलिए इसे कच्चा-पक्का कहने लगे। अब तो यह कच्चा ही हो गया है। अतिक्रमण जारी है। कुछ जागरूक जाट युवकों के प्रयत्नों से यह बचा हुआ है। अब इसमें एक संस्कृत पाठशाला भी चल रही है जो दानदाताओं पर निर्भर है।

जामुन वाली

कभी यज्ञशाला के, तो आज मीरापुर के दक्षिण पूर्व (अग्नि कोण) के कोने में है जामुन वाली। इस पर विशाल बाग सहित लगभग एक सौ बीघा कृषि भूमि है। तालाब भी काफी बड़ा था लेकिन भूम्मा वाली सड़क बनने से यह छोटा हो गया है। अब इसमें सिंघाड़े एवं कमल हैं। यह साधुओं के अधिकार में अखाड़े की सम्पत्ति है। शिव, हनुमान एवं देवी का मन्दिर है। भक्त दुर्गा देवी को सरस्वती समझकर पूजते हैं। यह स्थान सुक्खनलाल वैश्य के ज़मींदारी में था। इस वंश में अब महेन्द्र प्रकाश-विजय प्रकाश आदि हैं। अब यह स्थान भुम्मा ग्राम सभा के अन्तर्गत आता है। पहले बाग के चारों ओर उत्तम प्रजाति के जामुनों की बाढ़ थी इसलिए इसे जामुन वाली कहा जाने लगा। चूंकि नैर्ऋत्य कोण का स्वामी राक्षस माना जाता है इसलिए उसके शमनार्थ यज्ञशाला के इस कोने में हनुमान पूजन किया गया था। चूंकि इसके आस-पास यमुना पार के अतिथि राजाओं के शिविर लगे थे इसीलिए इसे यमुना वाला कहते थे जो बाद में यमुना-जमुना एवं जामुन वाली हो गया।

विशेष : महाभारत, अश्वमेधियर्वान्तर्गत अनुगीता पर्व के अध्याय अठासी (88) के श्लोक 32 के अनुसार यज्ञशाला में अग्निचयन (या हवन?) के लिए चार स्थान बनाये गये थे। प्रतीत होता है कि या तो ये चार स्थान ही तालाबों के रूप में बाद में विकसित हुए अथवा ये स्थान भी उपरोक्त तालाबों के समीप ही बनाये गये थे।

चतुश्चित्यस्च तस्या सीदृटादशकरात्मकः।
स रूक्मपक्षो निचितस्त्रिकोणो गरूड़ाकृतिः।।

सतियों वाला तालाब

बबरे वाली के समीप से होते हुए एक सम्पर्क मार्ग सिकन्दरपुर को गया है। इसी मार्ग पर जंगल में स्थित है सतियों वाला तालाब। यहां सतियों के दो मठ (मन्दिर) भी बने हैं। कुछ मठ ज़मींदोज़ भी हो गये हैं। कहा जाता है कि महाभारत युद्ध में वीर गति प्राप्त अनेक सैनिकों की विधवाओं ने यहां स्वयं को अग्नि को समर्पित कर सती पद प्राप्त किया था। तभी से यह सतियों वाला तालाब कहा जाने लगा और यहां पर सती होने की परम्परा बाद तक चलती रही। इस क्षेत्र की अनेक राजपूत स्त्रियां भी यहीं सती हुईं। कहा जाता है कि परीक्षितगढ़ के राजपरिवार की कोई महिला (सम्भवतः कुंवर किशन सिंह की पत्नी) भी यहां सती हुई थी।

जैत सिंह का तालाब

मवाना-बिजनौर मार्ग पर मवाना से लगभग 12 किलोमीटर की दूरी पर है ऐतिहासिक कस्बा बहसूमा। आज का बहसूमा किसी समय कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर का एक मोहल्ला मात्र था। कहा जाता है कि यहां पर पितामह भीष्म एवं उनके सहायकों के निवास थे। इसलिए यह भीष्म नगर या भीष्मपुरी आदि जैसे नामों से जाना जाता था। मुगल काल में यह

मुजफ्फरनगर जनपद के बहसूमा में स्थित राजा जैत सिंह का तालाब

भीष्मपुर से बहसुमा बन गया। इतिहासविदों के अनुसार यहां पर कौरवों का कोषागार था। बहसूमा बसु शब्द का विकृत रूप है जिसका अर्थ है कोष। सम्भव है कि भीष्म पितामह के संरक्षण के कारण ही यहां कोषागार बनाया गया हो तथा कोषागार एवं भीष्म का आवास दोनों यहीं हों। अनेक राजवंशों का उत्थान-पतन देखने के बाद इसने मुगलों की गुलामी भी की। उस काल के चार निर्माण आज भी जर्जर हालत में इसके चारों ओर खड़े हैं। इनके द्वारों पर लगे शिलालेखों की अरबी जैसी भाषा किसी ने आज तक नहीं पढ़ी अथवा पढ़ी नहीं जाती। उस समय ये क्या थे पता नहीं लेकिन आज इन्हें 'हजीरा' कहा जाता है।

प्रत्येक निर्माण लगभग 400-500 मीटर में है। चारों ओर दीवार है एवं बीच में एक ऊंचा चबूतरा सा बना है। हज़ीरा के वास्तु शिल्प एवं पत्थर मुझैड़ा गढ़ी (देखें बाय वाला कुआं) से मिलते हैं। इससे आभास होता है कि यह कभी बारह सादात में भी रहा हो।

सन् 1746 के लगभग परीक्षितगढ़ रियासत बनी और उसके शासक बने नागर गोत्री जैत सिंह (विस्तृत विवरण के लिए देखें लेखक की पुस्तक 'परीक्षितगढ़ का सम्पूर्ण इतिहास')। जैत सिंह ने अपने बहादुर सेनापति खेमकरण शर्मा के परामर्श पर बहसूमा को अपनी उप राजधानी बनाया। यहां पर जैत सिंह द्वारा निर्मित महल (दीवाने खास), वजीर का महल एवं दीवाने आम (बैठक अथवा कचहरी) आज भी अच्छी हालत में है। महल को हातम सिंह एवं दीवाने खास को श्री इलम सिंह ने काफी वर्षों पूर्व खरीद लिया है। जैत सिंह का तालाब भी उसी समय का है।

कहा तो यह जाता है कि यहां पर महाभारतकालीन चिन्हों को देख एवं पवित्र भूमि जान कर ही जैत सिंह ने निर्माण कराया था और यह तालाब यहां जैत सिंह से पहले भी था। कुछ भी हो लेकिन सुरक्षा की दृष्टि से यह तालाब अत्यधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि बहसूमा की अधिकांश बस्ती इस महल-तालाब से दक्षिण-पश्चिम की ओर है। यह निर्माण एकदम बस्ती से बाहर कराया गया था। इसलिए दक्षिण-पश्चिम की ओर तो सुरक्षा की दृष्टि से बस्ती हो गई और पूर्व की ओर जंगल। वहां से कोई भी हमला कर सकता था। इसलिए महल के सामने बैठक बनाई गई और बैठक की पूर्वी-उत्तरी एवं दक्षिणी दीवार के साथ-साथ विस्तृत तालाब जिसमें सदैव पानी भरा रहता था। यह पानी तोप के गोलों और शत्रु के सीधे आक्रमण से सुरक्षा प्रदान करता था। बैठक अथवा दीवाने खास की दक्षिणी दीवार से एक दम सटा हुआ राजा के सिंहासन अथवा बैठने का स्थान था। इस स्थान पर एक खिड़की लगी है जोकि हवा के लिए पंखे का कार्य तो करतीं ही थी साथ ही यहां से राजा पानी में कूद कर अपनी सुरक्षा भी कर सकता था। साथ ही यह बहसूमा के गन्दे एवं बारिश के पानी को अपने उदर के द्वारा पृथ्वी में उतार कर उसका भविष्य भी सुरक्षित करता था। इससे बैठक ठण्डी भी रहती थी। इसके तट पर बना मन्दिर इसकी धार्मिक एवं प्राचीन महाभारतकालीन पृष्ठभूमि को प्रदर्शित करता है।

1995 तक यह तालाब स्वच्छ पानी से लबालब एवं अतिक्रमण विहीन था। लेकिन अतिक्रमण ने आज इसे आधा कर दिया है। गद्दी के पीछे वाले भाग में मकान बन चुके हैं। शेष दिशाओं से भी तालाब सिकुड़ रहा है। पानी का स्थान कीचड़ एवं घास ने ले लिया है। यदि ऐसा ही रहा तो कुछ वर्षों में यह समाप्त ही हो जायेगा।

शेखपुरा का तालाब

मेरठ-मुजफ्फरनगर मार्ग पर खतौली से फलावदा रोड़ पर है ग्राम शेखपुरा। यह खतौली रेलवे स्टेशन के ठीक सामने पूरब दिशा में पड़ता है और यही पर है यह तालाब। इसका पहले लगभग नौ एकड़ का रकबा था जिसमें आधे में तालाब था और आधी भूमि तालाब की देखभाल के लिए कृषि योग्य थी। तालाब तो है लेकिन भूमि पर अतिक्रमण हो चुका है। तालाब में लगभग पांच कुएं थे जिनमें चार समाप्त हो चुके हैं और एक बीच में गहराई पर है। लेकिन इसका पता नहीं चलता। इस विशाल तालाब में चारों ओर से 52-52 सीढ़ियां हैं। स्नान आदि के लिए चारों ओर पक्के घाट बने हैं जिनमें दो-दो अष्टाकोणीय बुर्जियां (चबूतरे जैसे) बने हैं। तालाब की गहराई लगभग 78 फीट है। पहले यह कई बार सूख चुका है। इसमें खतौली मिल का पानी प्रदूषण फैलाने लगा तो गांव वालों ने उसे बन्द करा दिया। लेकिन कुछ लोगों द्वारा डाले जाने वाले कचरे को वे भी नहीं रोक पाये। अनेक घरों का तो मल भी सीधा इसी में आता है। दुखी लोग बताते हैं कि लगभग 50 वर्ष पूर्व तो इसका जल पीने के काम भी आता था लेकिन अब तो यह पशुओं के योग्य भी नहीं रहा।

किसने बनाया यह तालाब? गांव वालों का विश्वास करें तो इसे परियों ने एक ही रात में बनाया था। यहां परियों का मेला भी लगता था। परन्तु इतिहास की टूटी कड़ियां जोड़ने पर जो कहानी बनती है वह कुछ इस प्रकार है:

युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ के लिए वर्तमान मीरापुर के स्थल का चुनाव किया (देखो मीरापुर के तालाब)। इसमें दूर-दूर से राजा-महाराजा आये। उनके ठहरने के लिए दूर-दूर तक व्यवस्था की गई। काबुल-कन्धार-तिब्बत-भूटान आदि पर्वतीय क्षेत्रों एवं यमुना पार से आने वाले राजाओं एवं उनकी सेनाओं के ठहरने की व्यवस्था वर्तमान खतौली से मीरापुर तक के विशाल क्षेत्र में की गई। उनकी पानी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक तालाब बनवाये गये। मैदान के इस छोर पर शेखपुरा का तालाब था तो दूसरे छोर पर मीरापुर में यमुना वाला (जामुन वाली) तालाब था। इस बीच में और भी अनेक तालाब थे। उनमें से कुछ चिन्हित नहीं हो पाये, कुछ काल के गर्त में समा गये और अधिकांश अतिक्रमण के शिकार हो कर समाप्त हो गये। अनेक राजवशों से होते हुए यह स्थान शेखों व सैय्यदों की नवाबी में आया तो यहां शेखपुरा नामक गांव बसा दिया गया। 1780 के लगभग यहां बनजारों ने पड़ाव डाला। इस स्थान पर निसंतान बनजारे को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। खुशी में उसने इसे पक्का (अथवा जीर्णोद्धार) करके कुआं पूजन की रस्म पूरी की। इसी के साथ एक कथा और जुड़ी है। कहा जाता है कि एक बनजारा बहुमूल्य केसर (जाफरान) लेकर इधर से जा रहा था। यहां पर साधनारत एक साधु ने पूछा कि इसमें क्या है? बनजारे ने शंकाग्रस्त होकर कहा कि इसमें तो नमक है। साधु ने कहा चलो नमक होगा। आगे जाकर बनजारे ने देखा तो केसर के स्थान पर नमक था। लौटकर बनजारे ने क्षमा मांगी और सेवा करने को कहा। वह फिर केसर बन गया। साधु के आदेश पर उस बनजारे ने यह तालाब पक्का कराया।

किसी समय यहां मेला लगता था एवं उच्चकुलीन स्त्रियां स्नान करने आती थीं। अनजान लोग उन सजी-धजी सुन्दरियों को दूर से देख कर ही परियां कहते थे और मेले को परियों का मेला। अब यह तालाब शेखपुरा ग्राम पंचायत में है।

गाजियाबाद जनपद के तालाब

श्री दूधेश्वर महादेव मन्दिर एवं सरोवर

हिण्डन नदी को शास्त्रों में ब्रह्मा की पुत्री हरनन्दी कहा गया है। इसी के तट पर स्वयंभू दुग्धेश्वर मन्दिर का उल्लेख पुराणों में प्राप्त होता है। वर्तमान में यह स्थान गाजियाबाद में दूधेश्वर महादेव मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। युगाचार्य प्रभाकर दुग्धेश्वर महादेव स्तोत्र को निम्न श्लोक से प्रारम्भ करते हैं:-

पुलस्त्यसत्प्रेरणा तपस्यया हिरण्यगर्भात्मकलिंगभूतम्।
सृष्टयादिनाथं हरनन्दि पावनी नदी तटस्थं
शिवशक्ति रूपम्।।
रूद्रात्मकं गोपयसा प्रसन्नम् मृत्युज्जयं गोजननी नमन्तम्।
गोदुग्ध प्राकट्यशरीरवन्तं दुग्धेश्वरं तं मनसा नमामि।।

अर्थात् श्री पुलस्त्य ऋषि की प्रेरणा एवं तपस्या के फलस्वरूप हिरण्यगर्भ शिव ज्योतिर्लिंग स्वरूप सृष्टि के आदि नाथ, हरनन्दी नदी (हिण्डन) के तट पर शिव शक्ति स्वरूप, गोदुग्ध से प्रसन्न होने वाले, गौ को माता मानने वाले मृत्युंजय (शिव) एवं गो दुग्ध से ही प्रकट होने वाले दुग्धेश्वर शिव को (मैं) प्रणाम करता हूं।

प्राचीन समय में गाजियाबाद क्षेत्र कुरु प्रदेश के अन्तर्गत् आता था। गाजियाबाद के पास के क्षेत्र में रावण के पिता विश्रवा का आश्रम था जो अपभ्रंश होकर विश्वेषरा और अब विषरख हो गया। यह समस्त क्षेत्र ऋषियों की तपस्थली था। विश्रवा का एक पुत्र तथा रावण का सौतेला भाई कुबेर देवताओं का धनाध्यक्ष बन कर लंका में व्यस्त रहने के कारण पिता से मिलने नहीं आ पाता था। विश्रवा ने यह सोच कर कि वह अपने घनिष्ठ मित्र एवं इष्ट भगवान शिव से अवश्य मिलने आयेगा शिव को प्रकट करने के विचार से घोर तप किया। शिव ने प्रकट होकर, विश्रवा की इच्छा जान कर कहा कि "मैं तो काशी या कैलाश में रहता हूं। काशी तुम बना नहीं सकते इसलिए कैलाश बना सको तो मैं निवास कर लूंगा।" विश्रवा ने यहां कैलाश (कैलाश जैसी शिल्पकला एवं वातावरण) का निर्माण किया तो शिव यहां स्वयंभू लिंग के रूप में प्रकट हो गये। 'माता रुद्राणां' के अनुसार गऊ ने शिव को दूध पिलाया तो शिव दुग्धेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए। रावण ने यहीं पर दुग्धेश्वर की आराधना के फलस्वरूप लंका एवं अथाह स्वर्ण प्राप्त किया।

रावण की माता कैकसी राक्षस कन्या थी और इसके द्वारा ऋषि कुल में रावण जैसे अभिमानी का जन्म हुआ। स्त्री को शास्त्रों में तपस्वियों के लिए 'विश' कहा गया है। रावण आदि के जन्म के पश्चात् इन्हें विश्रवा के पैतृक स्थान विश्वेश्वरा में रखा गया।

"विषं रक्षति इति विषरख" सूत्रानुसार इस गांव का नाम विषरख प्रसिद्ध हुआ। कालान्तर में दुग्धेश्वर का यह स्थान लुप्त, जंगली और टीले युक्त हो गया तथा दुग्धेश्वर लिंग भूमि में समा गया। बाद में यहाँ मुस्लिम बाहुल्य हो गया। लेकिन विश्रवा के 'कैलाश' के कारण आज तक यह कैलाश नगर अथवा छोटा कैला के नाम से प्रसिद्ध है। कालान्तर में दुग्धेश्वर का प्राकट्य वि. स. 1511 कार्तिक शुक्ल पक्ष चतुर्दशी के दिन सोमवार तदनुसार 3 नवम्बर 1454 को बड़ी ही नाटकीय विधि से हुआ।

कैलाश नगर के चरवाहों की गायें एक टीले पर चढ़तीं तो उनके थनों से स्वयं दूध निकलने लगता। ग्रामीणों ने उसे खोदने का निश्चय किया। उधर कोढ़ नामक ग्राम में जूना अखाड़ा के एक सिद्ध संन्यासी को स्वप्न में भगवान शिव ने यहां पहुंचने का आदेश दिया। संत शिष्यों सहित यहां पहुंच गये। शुभ मुहूर्त्त में खुदाई करने पर भगवान का यह स्वयं भू-लिंग प्रकट हुआ। यहां कोई जल स्रोत भी निश्चित जानकर ग्रामीणों ने भेड़ों को बैठाया। कहा जाता है कि भेड़ जल के स्रोत के चारों ओर बैठती हैं। वहां खोदने पर एक दिव्य कूप निकला। इस कूप के जल का स्वाद-रंग प्रत्येक घण्टे में बदलता

रहता था। कभी खारा (समुद्री), कभी मीठा तो कभी दूधिया। इस जल के सेवन से अनेक रोग समाप्त होते थे। अब यह कूप लेन्टर से ढक कर बन्द कर दिया गया है। प्राकट्य दिवस से आज तक शिष्य परम्परा से यहां अनेक सिद्ध महन्त होते आये हैं। सिकन्दराबाद के क्रांतिकारी पं. रामचन्द्र शर्मा के अनुसार इस स्थान पर क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकें हुआ करती थीं।

31 जनवरी 1666 को शिवाजी और शम्भा जी चालबाजी से औरंगजेब की जेल से निकल कर यहां पर आये। यहां पर उन्होंने पूजा अर्चना एवं यज्ञ किया। कहते हैं कि दुग्धेश्वर मन्दिर के समीपस्थ तालाब शिवाजी द्वारा निर्मित यज्ञशाला थी। जो भी हो परन्तु यहां था तालाब ही। चाहे वह यज्ञशाला से बना हो अथवा सीधे तालाब के रूप में। वर्तमान के अवशेष एवं गाजियाबाद के बुजुर्ग उसे तालाब ही उद्घोषित करते हैं। वर्तमान में दुग्धेश्वर के व्यवस्थापकों ने पुनः उसे छत्रपति शिवाजी यज्ञशाला बना दिया है। क्या यह ठीक है? हां नगरपालिका के कचरा स्थल से तो यज्ञशाला कहीं बेहतर है।

शिवाजी ने मन्दिर का जीर्णोद्धार भी कराया था। पं. गंगा भट्ट द्वारा राजतिलक के पश्चात् शिवाजी ने महाराष्ट्र में पुणे के पास भगवान दुग्धेश्वर के नाम पर दुग्धेश्वर ग्राम भी बसाया था जो आज भी विद्यमान है।

एक दुग्धेश्वर मन्दिर देवरिया जनपद के गौरी बाज़ार से लगभग 10 मील दक्षिण में रुद्रपुर नामक ग्राम के समीप भी है। शिवपुराण के अनुसार यह महाकालेश्वर का उपज्योतिर्लिंग है। यह भूमि से लगभग 8 फीट की गहराई में है जबकि गाजियाबाद का दुग्धेश्वर लगभग 3 फीट नीचे है।

रमते राम का पक्का तालाब

दुग्धेश्वर महादेव मन्दिर से लगभग एक किलोमीटर पूर्व डासना गेट (सुभाष गेट) के समीप है रमते राम की कुटी, मन्दिर धर्मशाला एवं तालाब। तालाब क्या अब उसे कूड़ादान कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। समीपस्थ निवासियों के अनुसार तालाब का मालिक नगरनिगम इस ऐतिहासिक धरोहर को लेकर मानो गूंगा-बहरा बना हुआ है। कभी उसमें खते डाले जाते हैं तो कभी निकाले जाते हैं। अधिकारियों के साथ ही योजनाएं भी बदलती रहती हैं। लेकिन तालाब का दुर्भाग्य है कि उसकी स्थिति जस की तस है।

तालाब के इतिहास का कोई ज्ञात स्रोत नहीं है। परन्तु तालाब के शिल्प एवं किंवदन्तियों के अनुसार यह अत्यधिक प्राचीन है। यह स्थान तपस्थली तो रहा ही है इसीलिए यहां अनेक सन्त-मुनि महात्मा आते रहे हैं। ऐसे ही एक सिद्ध सन्त रमते-राम ने लगभग 500 वर्ष पूर्व यहां किसी प्राचीन सिद्धाश्रम के स्थान पर अपनी तपस्थली का निर्माण किया। यहां पर बाग लगाया और तालाब का निर्माण कराया। आज भी यह स्थान रमते-राम की बगीची के नाम से विख्यात है। यहां एक कुंए के विषय में प्रचलित है कि इस कुएं से एक सुरंग दुग्धेश्वर मन्दिर-शाहदरा एवं दिल्ली के गौरी-शंकर मन्दिर तक जाती थी। रमते-राम के अनेक चमत्कारी किस्से आज भी जनता में प्रचलित हैं। नगर निगम ने श्रद्धांजलि स्वरूप इस सड़क का नाम 'रमते-राम रोड' कर दिया है। इसी के पास एक तलैया भी है जो सूख कर अतिक्रमण का शिकार हो चुकी है। तालाब भी समाप्ति की ओर अग्रसर है। पहले यहां बनवास के समय राम को सरजू पार कराने की लीला का मंचन किया जाता था। इसलिए इसके एक घाट को आज भी रामघाट कहते हैं। यहीं पर प्राचीन शिव मन्दिर है।

कुत्ते का तालाब

कुत्ते का तालाब ! जी हां एक दम सच।

गाजियाबाद के लालकुंआ से लगभग एक से डेढ़ किलोमीटर दूर चिपियाना ग्राम में स्थित है कुत्ते का तालाब एवं समाधि। इस देश को भगवान का वरदान कहें या अंधविश्वास अथवा आस्था कि कहीं कोढ़ को, कहीं बाय को तो कहीं कुत्ते के काटे को ठीक करने वाले कुएं अथवा तालाब हैं। इस कुत्ते के तालाब में नहाने मात्र से कुत्ते काटे का असर दूर हो जाता है। यह केवल अंधविश्वास ही नहीं वरन् एक दम सच है। दूर-दूर से ऐसे मरीज यहां स्नान करके अपने पहने हुए कपड़े छोड़ देते हैं। समाधि पर स्थित कुत्ते की प्रतिमा के चरण स्पर्श करके अपनी श्रद्धानुसार कुछ दक्षिणा चढ़ाते हैं और ठीक हो जाते हैं। इन अनुष्ठानों को करने से मरीज के अकड़ाहट आदि लक्षण तुरन्त समाप्त हो जाते हैं।

इस तालाब का सीधा सम्बन्ध यहां से लगभग एक सौ किलोमीटर दूर मुजफ्फरनगर जनपद स्थित 'नरा' गांव से है। 'नरा' में भी एक टीले पर इसी लक्खी बनजारे एवं कुत्ते की समाधि बनी है। यह नष्टप्राय समाधि चारों ओर से खुली थी। जिसके बीच में तो लक्खी एवं उसकी पत्नी की समाधि बनी थी और छत में इस स्वामी भक्त कुत्ते की तस्वीर बनी थी। कुत्ते और लक्खी की कहानी जानने से पूर्व नरा के रोचक इतिहास को भी जानना आवश्यक है। इतिहास के जानकार बताते हैं कि नरा का पूर्ववर्ती नाम 'नरवरगढ़' था। यहां का राजा नल था। नल दमयन्ती की कहानी अत्यधिक प्रसिद्ध है। नल के पुत्र ढोला का विवाह पिंगल गढ़ की राजकुमारी एवं राजा बुध की पुत्री मरवन से हुआ था। (यह नल पौराणिक नहीं बल्कि बाद के हैं) लोक गाथाओं में आल्हा एवं बारह मासा की तर्ज पर गाया जाने वाला यह ढोला-मारूं (मरवन) का किस्सा कंवर निहालदे के रूप में प्रसिद्ध है। इसके अनुसार बन्जारों ने नरवर गढ़ पर हमला भी किया था। इस सन्दर्भ में निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं:

जितने संग में है बणजारे बड़े मर्द नहीं हटने हारे।
उनसे डरते राजा सारे, ये भी वहां थर्रायेगा।।
जो लड़े सो पछतावे।

मुगल काल में यह 'बारह सादात' (देखें बाय वाला कुआं) में सैयदों की जागीर रहा। ये सैयद दिल्ली बादशाह के यहां ऊंचे-ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित थे। उस समय यह नरीवाला खेड़ा एवं नरागढ़ी दो भागों में विभक्त था। नरागढ़ी बारह सादात में थी और नरी वाला खेड़ा यहां के ब्राह्मणों के अधिकार में था। ये ब्राह्मण भी लड़ाकू एवं योद्धा थे। डर नाम की चीज का इन्हें पता नहीं था। सदैव शस्त्रों से लैस रहना इनका स्वभाव था। सैयद दिल्ली रहते थे और उनकी बेगमें नरागढ़ी में। ये ब्राह्मण बलपूर्वक उनकी फसल लूट लेते थे। बेगमों की शिकायत पर सैय्यदों ने दिल्ली से घर आने की खुशी का बहाना बना कर ब्राह्मणों को भोजन का निमंत्रण भेज दिया। सभी ब्राह्मण परम्परा के अनुसार अपने शस्त्र बाहर रख कर केवल अधोवस्त्र (धोती) में जीमने बैठ गये तो सैयदों ने उनके सिर कलम कर दिये। किसी प्रकार उनकी एक गर्भवती स्त्री भाग कर परीक्षितगढ़ के राजा जैत सिंह के राज ज्योतिषी पं. बीरूदत्त के पास भोखाहेड़ी (जानसठ के पास) जा पहुंची और उसको समस्त घटना सुनाई। जैत सिंह के आदेश पर नैन सिंह दो सौ जवानों के साथ आया और गढ़ी को बरबाद कर के ब्राह्मणों का बदला चुकाया। गढ़ी को लूट कर उसमें आग लगा दी। (सन 1750 ई. के आसपास)।

बेगमों ने हीरे-जवाहारात आदि तो उठा लिये परन्तु हथियार और सोना आदि कुएं में डाल दिया और दिल्ली चली गईं। इस प्रकार सैय्यदों का अध्याय समाप्त हुआ और गढ़ी की शेष जनता दूर-दूर जा बसी। गढ़ी को झाड़-झंखाड़ों ने अपने आगोश में ले लिया।

कुछ समय पश्चात् शाहआलम द्वितीय की फौज से आये हुए तीन राजपूत और एक बाल्मिकी सिपाही ने आकर इसको आबाद किया। यहां से पलायन किये हुए कई परिवारों को भी वापिस लाकर उन्होंने पुनः बसाया। इन परिवारों में वर्तमान के लाल सिंह एवं विश्वम्भर धीमान के पूर्वज एवं बल्लन व जमैल सैनी के पूर्वज थे जिन्हें पास के बुपैड़ा ग्राम से लाया गया था।

गढ़ी का वह कुआं जिसमें शस्त्र और सोना आदि डाला गया था वर्तमान में शरीफ पुत्र शकरूल्ला के मकान में आकर बन्द हो चुका है। इस नरवरगढ़ के 52 कुएं जमींदोज हो चुके हैं। आज भी यहां गढ़ी-महलों के अवशेष दबे पड़े हैं। लगभग 15 फीट तक गहरे खोदने पर भी नींव का तल प्राप्त नहीं होता। खुदाई करने पर अनेक रहस्यों से पर्दा उठ सका है।

बनजारा (पहले घूम-घूम कर बणज/व्यापार करने वाले को बनजारा कहा जाता था) किसी का कर्जदार हो गया। कर्जा चुकाने के दबाव में आकर लक्खी ने अपना स्वामी भक्त कुत्ता साहूकार को अमानत के तौर पर सौंप दिया। साहूकार के यहां डकैती पड़ी। कुत्ते ने पीछा किया। डकैतों ने चोरी का धन इस तालाब में डाल दिया। सुबह होने पर मालिकों के साथ जा कर कुत्ते ने वह धन बरामद करा दिया। साहूकार ने एक कागज पर 'कुत्ते ने कर्जा उतार दिया' जैसा कुछ लिखकर कुत्ते के गले में बांधकर उसे छोड़ दिया। कुत्ते को लक्खी बंजारे ने आता देखा और उसे गद्दार समझकर दूर से ही गोली मार दी। कुत्ता मर गया। पास आकर गले का कागज पढ़ा तो बहुत पछताया और रोया। तभी से कहावत प्रसिद्ध हुई कि 'ऐसे पछतायेगा जैसे कुत्ते को मार कर बनजारा पछताया था'। बाद में लक्खी ने भी कुत्ते के शोक में आत्महत्या कर ली। उसकी पत्नी सती हो गई। इस प्रकार कुत्ते ने धन चिपियाना (गाजियाबाद) में बरामद कराया तो नरा में उसको गोली लगी। दोनों स्थानों पर कुत्ते की समाधि बनाई गई। नरा में बनजारा एवं कुत्ते की समाधि के नाम लगभग 30 बीघा भूमि थी जोकि शासन-प्रशासन ने गत योजना में दलितों को दे दी। अब केवल कुछ गज भूमि में समाधि स्थल ही शेष बचा है। वह भी समाप्तप्राय सा है।

तालाब पर पहले लक्खी बनजारा, उसकी पत्नी एवं कुत्ते की प्रतिमाएं लगी थीं। किसी कारण दोनों प्रतिमाएं नष्ट हो गईं और केवल कुत्ते की शेष रह गई। एक बार समीप के जलालपुर गांव का एक कुम्हार कुत्ते की प्रतिमा चोरी से लेकर चला। कुछ दूर जाने पर कुम्हार पागल हो गया और कुत्ते की प्रतिमा को वहीं छोड़ कर चला गया। ग्रामवासियों ने उस प्रतिमा को पुनः स्थापित किया।

एक बार इसी गांव के कुछ अराजक तत्वों ने खजाने की खोज में समाधि को खोद डाला और कुत्ते की प्रतिमा तोड़ दी। पता चलने पर शेष गांव वालों ने उन्हें रोका तो उनमें झगड़ा हुआ, दो-चार मौतें भी हुईं। खजाना वहां नहीं मिला। कुछ दिन पश्चात् लक्खी बनजारे के काफिले से सम्बन्धित कुछ लोग बहुत से ऊंट लेकर आये और दोनों बम्हेटा (पास ही बम्हेटा नाम के दो गांव हैं) के बीच में किसी स्थान पर खुदाई कर खजाना निकाल कर ले गये (सम्भवतः लक्खी की मृत्यु के वर्षों पश्चात्)।

इतिहास खोजने पर ज्ञात होता है कि लक्खी बनजारा लक्खी (लखपति) ही नहीं बल्कि करोड़ी (करोड़पति) मारवाड़ी बनजारा था। प्रसिद्ध लेखक एवं चिन्तक आचार्य दीपंकर अपनी पुस्तक 'स्वाधीनता आंदोलन और मेरठ' में लिखते हैं कि ''वह करोड़पति बनजारा अंग्रेजी राज का घोर शत्रु था। उसने आगरा से मुजफ्फरनगर तक अपने ठहरने के पड़ावों पर 400 कुएं बना रखे थे। ग्रामीण कहावत है कि 'लक्खी बनजारा अपना ही पानी पीता था' अर्थात् वह जहां भी ठहरता था वहीं कुआं बनाता था। उसने 1857 के अस्थिर दिनों में भांभोरी (सरधना-मेरठ) एवं छुर के ग्रामीणों को अपने काफिले में मिला कर उनकी सहायता भी की थी। इसका अर्थ है कि 1857 के आस-पास का समय लक्खी का स्वर्ण काल था। इस आधार पर कुत्ते का तालाब इससे भी बहुत पूर्व का है।

चोरों द्वारा तोड़ी गई कुत्ते की प्रतिमा का सिर वर्तमान समाधि के नीचे दबा है एवं ऊपर ग्रामीणों द्वारा नवीन प्रतिमा स्थापित है।

नृग का (नक्का) कुआं

पूर्व के मेरठ जिले का भाग लेकिन अब जनपद गाजियाबाद की एक तहसील 'गढ़मुक्तेश्वर'। गढ़मुक्तेश्वर गाजियाबाद से हापुड़ होते हुए अथवा मेरठ से किठौर होते हुए आसानी से पहुंचा जा सकता है। इसे रूहेलखण्ड (मुरादाबाद-रामपुर-बरेली आदि), पूर्वांचल (लखनऊ आदि), नेपाल एवं उत्तराखण्ड (नैनीताल-कौसानी-मुंस्यारी आदि) का प्रवेश द्वार कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

'खाण्डवी वन' से प्रसिद्ध इस घोर वन में भगवान राम के एक पूर्वज एवं महादानी महाराज शिवि ने अपना चतुर्थ सन्यास आश्रम पूर्ण किया एवं भगवान परशुराम से शिवलिंग की स्थापना कराई। वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख केंद्र, शिवि की तपस्थली एवं शिव की स्थापना के कारण इसका नाम शिव वल्लभपुर प्रसिद्ध हुआ। नारद जी के श्राप से विष्णु के गण जय-विजय को मुक्ति प्राप्त होने के कारण इसका नाम गणमुक्तीश्वर प्रसिद्ध हुआ जो अपभ्रंश होकर गढ़मुक्तेश्वर हो गया।

महाभारत काल में यह पत्तन एवं मुख्य व्यापारिक स्थल के रूप में विकसित हुआ। इसके उत्तर में स्थित पुष्पावती नामक भव्य उद्यान में द्रौपदी वन-विहार के लिए आती रहती थी। यह स्थान अब 'पूठ' के नाम से जाना जाता है। महाभारत युद्ध के मृतक वीरों का श्राद्ध-तर्पण गंगा किनारे गढ़मुक्तेश्वर में कर मुक्ति प्रदान की गई।

इसी गढ़मुक्तेश्वर में स्थित है नक्का कुआं - यह कुआं नहीं बल्कि बावड़ी है। पानी के प्रयोग के लिए इसमें चारों ओर सीढ़ियां बनी हैं। रस्सी द्वारा पानी खींचने की व्यवस्था भी है। इसके विषय में कहा जाता है कि इसके नीचे भूमि नहीं है अर्थात् अनन्त गहराई है एवं इसमें सीधे गंगा जी से जल आता है। इसे नक्का (नृग का) एवं नहुश कूप कहना भ्रम पैदा करता है क्योंकि दोनों राजा पृथक वंश और समय में हुए हैं। नहुश भी कई हुए हैं परन्तु ये राजा नहुश पाण्डवों के पूर्वज थे। इन्द्र दुर्वासा ऋषि के श्रापवश कमल की नाभ में जा छुपे तो 'नहुश' को इन्द्रासन पर आसीन कर दिया गया। इन्द्र-इन्द्राणी की चाल के वशीभूत होकर 'नदुश' सप्तऋषियों को बग्घी में घोड़ों की भांति जोतकर इन्द्राणी से मिलने जा रहे थे। उन्होंने ऋषियों को जल्दी चलने को कहा, चाबुक मारा, अपमान किया। इसलिए अगस्त्य ऋषि ने श्राप दिया तो विशाल अजगर बनकर भूमि पर आ गिरे। बनवास के मध्य अजगर ने भीम को जकड़ लिया तो युधिष्ठिर के द्वारा स्वर्ग को भेजा गया। (सन्दर्भ - महाभारत वन पर्व - उद्योग पर्व)।

श्रीमद्भागवत् के दशम् स्कन्ध के अनुसार वन में खेलते हुए यदुवंशी कुमारों ने एक कुएं में विशाल गिरगिट को देखा। निकालने में विफल रहने पर भगवान कृष्ण को बुलाया गया। भगवान को देखते ही वह अतीव सुन्दर मानव बन गया। कृष्ण के पूछने पर उसने कहा -

नृगो नाम नरेन्द्रो ऽ हमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो।
छानिप्राख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम ।।

अर्थात् मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग हूं। आपके सामने दानियों के नामों की गिनती होने पर मेरा नाम भी आपके कानों में पड़ा होगा।

नृग बहुत दानी थे। एक बार दान करने वाली गायों के झुण्ड में किसी का दान न लेने वाले ब्राह्मण की गऊ आ गई। राजा ने अनजाने में उसे भी दान कर दिया। दान लेने तथा गऊ वाले ब्राह्मण में विवाद हुआ। फैसला नहीं हुआ। इसी दोष के कारण मृत्योपरान्त राजा गिरगिट बना।

इस गिरगिट (नृग) ने भगवान कृष्ण से विनीत स्वरों में कहा:

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तनः कन्याः
सदासीस्तिलरूप्यशययाः।
वासांसि रत्नानि परिच्छादान् रथा-निष्टं च
यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ।। 5।।

इस प्रकार मैंने बहुत सी गौएं, पृथ्वी, सोना, घर, घोड़े, हाथी, दासियों सहित कन्याएं, तिलों के पर्वत, चांदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, गृह-सामग्री, रथ आदि दान किये। अनेक यज्ञ किये और बहुत से कुएं, बावली (बावड़ी) आदि निर्माण कराये।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह बावड़ी अथवा कुआं राजा नृग द्वारा निर्मित है। इसका नाम नक्का कुआं भी 'नृग का' ही अपभ्रंश है। इसके पास ही 'मुक्तेश्वर' नामक वह शिवलिंग है जो भगवान परशुराम ने स्थापित किया था। परन्तु प्राचीनता की दृष्टि से दूसरा शिवलिंग जोकि कुएं के एकदम समीपस्थ मन्दिर में स्थापित है अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। यह घिसते-घिसते लगभग समाप्ति की ओर है। इसे सुरक्षित रखने के लिए इस पर तांबे का खोल चढ़ा देना चाहिए। मेरे अनुमान से तो यही 'मुक्तेश्वर' शिवलिंग है जबकि परशुराम द्वारा स्थापित शिवलिंग 'झारखण्डेश्वर' लिंग है। अब यह स्थान 'श्री पंच दशनामा जूना अखाड़ा' के स्वामित्व में है। पर्यटन विभाग द्वारा यहां विकास कार्य कराया जा रहा है। वर्तमान महन्त महेश गिरि ने अत्यधिक श्रम व मुकदमों से इसके कई भवनों को कब्जामुक्त कराया है।

सन् 1679 में औरंगजेब के आदेश पर गढ़मुक्तेश्वर के मन्दिर आदि तोड़कर नष्ट कर दिये गये। नृग के कुएं में गऊ रक्त डाल कर अपवित्र कर दिया गया। मुक्तेश्वर महादेव मन्दिर को मकबरा बना दिया गया। शिवलिंग के ऊपर कब्र बना कर उसे झन-झन का मकबरा घोषित कर दिया गया। मराठों का आधिपत्य होने पर मराठों द्वारा इसका उद्धार किया गया।

नक्का कुआं के सामने कभी कृष्ण भक्त मीरा ने अपना पड़ाव डाला था। इसलिए यह विशाल मैदान मीरा की रेती के नाम से प्रसिद्ध है। मीरा द्वारा निर्मित मन्दिर औरंगजेब द्वारा नष्ट कर दिया गया। अत्यधिक चढ़ावा आने के कारण औरंगजेब ने उसे अमरोहा के मुस्लिम फकीरों को जागीर रूप में दे दिया। अब उन्हीं का कब्जा है। 3-4 वर्ष पूर्व यहां एक नकली कब्र और मज़ार बना दिया गया है।

डासना मसूरी की प्राकृतिक झील

गाजियाबाद से लगभग दस किलोमीटर हापुड़ मार्ग पर डासना रेलवे स्टेशन के समीप ही है मसूरी की प्राकृतिक झील। अब तो इसके अधिकांश भाग पर धान आदि की फसलें होती हैं लेकिन किसी समय यह मुगलों-नवाबों और अंग्रेजों की विदेशी पक्षियों की शिकारगाह थी। सम्भवतः इसी कारण यहां प्रवासी पक्षियों का आना कम हो गया है। लेकिन शिकारी अब भी मानने को तैयार नहीं है। प्रवासी पक्षी यह नहीं समझ पा रहे हैं कि 'अतिथि देवो भव' के इस देश में आखिर उन्हें मारा क्यों जाता है?

हसनपुर की प्राकृतिक झील

गाजियाबाद-हापुड़ मार्ग पर गाजियाबाद से लगभग दस किलोमीटर दूर है डासना-मसूरी। मसूरी औधोगिक क्षेत्र में दादरी मार्ग पर गांव हसनपुर में है 35 हेक्टेयर की विशाल झील। झील के एक ओर है हसनपुर तो दूसरी ओर है गांव छिड़ौली। झील का लगभग 1/3 भाग पानी से परिपूर्ण है तो शेष भाग में ऊंची-ऊंची घास एवं कुछ धान आदि की फसलें खड़ी हैं। झील में मछली पालन होता है और इससे जिला पंचायत को अच्छी आय हो जाती है।

यह झील पक्षियों की विभिन्न विदेशी प्रजातियों का प्रवास स्थल माना जाता है। वैसे तो वर्ष भर ही लेकिन जाड़ों में विशेष रूप से यहां विदेशी पक्षी आते रहते हैं। उस समय यहां का नजारा देखने योग्य होता है। परन्तु मांस से पेट भरने वाले कुछ शिकारी दरिंदे इसे 'सीज़न' मानते हैं। वे यह भी नहीं सोचते कि यदि विदेश में गये उनके परिजनों का शिकार किया जाये तो कितना दुखद होगा? ऐसे लोग वास्तव में मानवता के माथे पर कलंक हैं।

गांव को महाराजों (साधुओं) वाला हसनपुर के नाम से जाना जाता है। ग्रामीण बताते हैं कि कभी प्राचीन समय में यहां साधु तपस्या करते थे। जनसंख्या वृद्धि के साथ वनखण्ड समाप्त होने लगे तो तपस्थली एवं सच्चे साधु भी लुप्त होने लगे। जब यहां गृहस्थी परिवार बसने लगे तो साधु कहीं अन्यत्र चले गये और यह बन गया 'महाराजों वाला हसनपुर'। यहां पर अधिकांशतः एक गोत्रीय जाट परिवारों का निवास होना सिद्ध करता है कि कभी यह इनके बुजुर्गों ने आबाद किया होगा।

एक कुआं, दो पानी जारचा

गाजियाबाद-डासना-दादरी मार्ग पर स्थित नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन (एनटीपीसी) से लगभग पांच किलोमीटर है 'जारचा'। भारतीय गजेटियर (उ. प्र.) जिला गाजियाबाद वर्ष 1999 के अनुसार जारचा की स्थापना सैय्यद जैनुलब्दीन ने की थी। इसके वंशज सब्जवारी कहे जाते हैं क्योंकि उनकी मान्यता के अनुसार उनके बुजुर्ग 'तुर्किस्तान के सब्जवारी गोत्रीय थे। ये पूर्वज तुगलक वंशीय शासन काल (सन् 1320-1413) के मध्य भारत आये थे। पूर्व में यहां पर मेवातियों का प्रभुत्व था परन्तु सैय्यद बादशाह मुईजुद्दीन मुबारक शाह के कहने पर जैनुलब्दीन ने उन्हें यहां से बाहर निकाल दिया। इस पर प्रसन्न होकर बादशाह ने जैनुलब्दीन को 3500 बीघा ज़मीन दी। तब उसने जारचा की स्थापना की। इस प्रकार जारचा का स्थापना काल सन् 1414 ई. से 1451 ई. के मध्य माना जा सकता है। कहा जाता है कि जैनुलब्दीन ने यहां चार कुएं बनवाये जिनके कारण यह 'चार-चाह' नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो अपभ्रंश होकर जारचा बन गया। (स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण जैनुलब्दीन की सम्पत्ति जब्त कर ली गई)

कुओं के अवशेष तो जारचा में आज भी देखें जा सकते हैं लेकिन उपरोक्त विवरण इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। क्यों?

1. जैनुलब्दीन को भूमि सैय्यद बादशाह ने दी। सैय्यद वंश का शासन सन् 1414 से 1451 ई. तक रहा। स्वतंत्रता

संग्राम सन् 1857 में हुआ तब तक जैनुलब्दीन जीवित कैसे रहा?

2. जैनुलब्दीन से भी पूर्व यह समस्त क्षेत्र जारचा के नाम से ही जाना जाता था। फिर जैनुलब्दीन इसका संस्थापक कैसे हुआ?

3. गज़ेटियर के अनुसार जारचा शब्द की व्युत्पत्ति 'चार-चाह' (चार कुएं) से हुई। चाह शब्द का अर्थ प्रेम आदि होता है न कि कुआं, फिर जारचा नाम क्यों पड़ा?

खोजी दृष्टि, तार्किक कसौटी एवं स्थानीय किंवदन्तियों के अनुसार जो दृष्टिगोचर हुआ उसका सारांश निम्न प्रकार है -

जारचा से लगभग 20 किलोमीटर दूर द्रोणाचार्य का आश्रम स्थल दनकोर नामक कस्बा है। द्रोणाचार्य कुरुवंश के आचार्य (शिक्षक) थे इसलिए कुरुवंश ने यह समस्त क्षेत्र द्रोणाचार्य को जागीर के रूप में दे रखा था। आचार्य-आचारिया-आचारजा आदि के रूप में विकृत होता हुआ विधर्मियों की जुबान में यह जारचा हो गया। यह क्षेत्र द्रोणाचार्य की गायों का चरागाह था जो अपभ्रंश होकर चार्य-चार-चाह (गाह) जैसा विकृत होते हुए जारचा बन गया। यह समस्त क्षेत्र उस समय विशाल वनखण्ड था। सम्भवतः मुगल काल में भी चरागाह रहा हो। मन्दिर का प्राचीन शिवलिंग इसकी पुष्टि करता है। ग्रामवासियों के कथनानुसार कुओं का निर्माण जैनुलब्दीन ने नहीं परन्तु बनजारों ने कराया था। ये कुएं विदेशी आक्रमणों से भी पूर्व के हैं।

जैनुलब्दीन ने जिस जारचा से मेवों को बाहर निकाला था वह स्थल अब ''उज्जड़ खेड़ा'' (उजड़ा गांव) के नाम से जाना जाता है जोकि वर्तमान जारचा से लगभग एक किलोमीटर दूर है। जारचा के चारों ओर कभी खाई एवं चारदीवारी थी। जारचा से कुछ ही दूरी पर मेवों का शिव मन्दिर था जो अब ध्वस्त हो गया है। मुसलमानों ने इसे मस्जिद के रूप में अपना कहा तो हिन्दुओं ने प्राचीन दस्तावेजों के आधार पर मन्दिर सिद्ध किया। जारचा का सर्वाधिक विस्मयकारी पोषती खाना का वह कुआं है जिसमें खारा और मीठा दो तरह का जल है। एक ओर खींचा तो मीठा दूसरी ओर खारा। है न विस्मयकारी! अब तो सभी कुएं समाप्त हो गये हैं। जारचा का समीपस्थ ग्राम कलौंदा आल्हा-ऊदल के समय का लोहागढ़ बताया जाता है।

जारचा के रघुवीर शरण जैन किसी समय कश्मीरी गेट, दिल्ली के विशाल भू-भाग के मालिक थे। अंगेजों द्वारा जारचा जागीर जब्त होने पर उन्होंने उसका आधा भाग खरीद लिया। शेष आधा भाग खुरशैद अली व जमशेद अली ने खरीदा। कहा जाता है कि ये दोनों नवाब बागपत के पुत्र थे। खुरशैद अली ने खुरशैद पुरा एवं जमशेद अली ने जमशेद पुरा बसाया तो रघुबीर शरण के नाम पर रघुबीर गढ़ी बस गया। जमींदारी उन्मूलन में रघुबीर शरण के परिवार द्वारा स्कूल के नाम पर बचाई गई चालीस बीघा भूमि आज भी बंजर अवस्था में पड़ी है। रघुवीर शरण ने दिल्ली से कुछ मुस्लिमों को भी लाकर बसाया था। दिल्ली वालों में आज वे दिल वालों के नाम से जाने जाते हैं।

जारचा में जैन समाज भी प्रतिष्ठित रहा है। जैन सम्वत् 1968 (सन् 1441 ई.) का बना जैन मन्दिर जारचा की शोभा माना जाता है। इसी परिवार के ज्ञान चंद जैन ने यहां एक धर्मार्थ हाई स्कूल भी चला रखा है। आवश्यकतानुसार वे इसकी आर्थिक सहायता ही कर देते हैं इससे लेते कुछ नहीं। यहां के लाला बनारसी दास पुत्र खिच्चु मल, सरदारी मल, त्रिलोक चंद जैन ने विक्रमी सम्वत् 2016 (सन् 1960 ई.) में एक घण्टाघर एवं गांधी जी की मूर्ति भी स्थापित की थी।

किसी समय जारचा व्यापारिक केंद्र था। गांव के मक्खन सिंह सिसौदिया एवं लाला कपिल कुमार बताते हैं कि दादरी-धौलाना-दनकौर आदि तक के ग्रामीण सामान खरीदने यहीं आते थे। खूब भीड़ रहती थी। कुओं के साथ-साथ जारचा भी अधोमुख होता गया लेकिन उनकी धार्मिक आस्थाएं आज भी यथावत् है। कांवड़ियों की सेवा करने यहां का दल सरूरपुर (सरधना) वर्ष में दो बार आज भी जाता है।

सिद्ध बाबा कौड़िया तालाब

मोदीनगर-हापुड़ मार्ग पर मोदीनगर से लगभग 6 किलोमीटर दूर है गांव मछरी। मछरी से लगभग 1 किलोमीटर है कौड़िया तालाब। लगभग 20 एकड़ में फैला यह कच्चा तालाब सूखने के कगार पर है। मछरी, शाहजहांपुर, भटजन एवं भोजपुर चार गांवों की सीमा पर स्थित है कौड़िया तालाब। इस विशाल तालाब के चारों ओर इसकी ऊंची-ऊंची पाल (तट या किनारे) बीच में कोई प्राचीन लुप्त नदी का भ्रम उत्पन्न करती है। मोहिउद्दीनपुर की सहकारी चीनी मिल का गन्दा नाला तालाब से निकाल दिया गया तो तालाब अब दो भागों में बंट गया। तालाब के पश्चिमी तट पर सिद्ध बाबा की समाधि, 50 वर्ष (1857 के समीप का) पूर्व एक साधु न्यादर नाथ द्वारा निर्मित शिव मन्दिर, एक भक्त ब्रजमोहन शर्मा निवासी बेगमाबाद द्वारा निर्मित सिद्ध बाबा तथा दुर्गा देवी के दो मन्दिर एवं 16 फरवरी 1977 ई. को पण्डित श्याम सिंह निवासी बेगमाबाद (मोदीनगर) द्वारा निर्मित यज्ञशाला है। बाबा की एक समाधि भी है। तालाब पर गुरुपूर्णिमा एवं हनुमान जयंती के अवसरों पर भक्त ब्रजमोहन शर्मा जागरण-कीर्तन एवं भण्डारे का आयोजन करते हैं तो ज्येष्ठ शुक्ला दशमी (जेठ का दशहरा) एवं श्रावण कृष्णा त्रयोदशी (महाशिवरात्रि) उत्सवों पर ग्रामीणों के सहयोग से विशाल मेले का आयोजन किया जाता है जिसमें अन्य प्रदेशों से भी दर्शक-भक्त आते हैं। तालाब के नाम लगभग 24 एकड़ कृषि भूमि है जिसमें केवल 6-7 एकड़ ही चालू एवं शेष बंजर है। वैसे तो तालाब-मन्दिर की देख-रेख हेतु उपरोक्त ग्रामीणों ने एक समिति बना रखी है लेकिन अराजक तत्वों के सामने यह भी बेकार है। यहां की देख-भाल व साफ-सफाई भज्जन गांव के एक ब्रह्मचारी भक्त गुरुदेव गुर्जर करते हैं। तालाब की विशेषता यह है कि इसका पानी व मिट्टी चर्म रोगों को दूर करते हैं। साधारण चर्मरोगी 3-4 दिनों में स्नान करने पर रोग मुक्त हो जाता है। दूरस्थ व्यक्ति तालाब की मिट्टी अपने घर ले जाकर उसका गारा बनाकर रोगयुक्त स्थान पर लगायें और सूखने पर नहायें तो भी रोग दूर हो जाता है। इसीलिए इसे कोढ़िया तालाब कहा जाता था जिसका अपभ्रंश होकर कौड़िया बन गया। सरकार व स्वयंसेवी संस्थाओं को चाहिए कि वे तालाब की मिट्टी-पानी की जांच से कोढ़ जैसे रोग को दूर करने वाले तत्वों की पहचान करा कर जनहित में उनका प्रयोग करें या औषधि का आविष्कार करें।

कौड़िया तालाब के विषय में बुजुर्ग बताते हैं कि लगभग 500 वर्ष पूर्व एक लक्खी बनजारा इधर से अपने कारवां के साथ जा रहा था। उसे भयंकर खुजली का रोग था। यहां उसने एक छोटा सा प्राकृतिक तालाब देखा। पानी का सहारा पाकर उसने यहीं पड़ाव किया। तालाब के जल प्रयोग से वह रोग मुक्त हो गया। तब तो प्रसन्न होकर उसने इसे विशाल तालाब का रूप दे दिया। यहां पर उसने एक कुआं भी बनवाया जो अब समाप्त हो चुका है। लक्खी जहां भी गया उसने इस अद्भुत तालाब के विषय में बताया। दूर-दूर से आकर लोग कुष्ठ जैसे दुःसाध्य रोगों से मुक्ति पाने लगे और कौड़िया तालाब प्रसिद्ध हो गया। इसके इस प्राचीन गुण का आज भी साक्षात् अनुभव किया जा सकता है। लक्खी बनजारे के विषय में लोग समय की शंका करते हैं जबकि शंका निर्मूल है क्योंकि लक्खी बनजारा नाम नहीं बल्कि उपाधि होता था। जिसके पास व्यापारिक सामान ढोने के लिए एक लाख बधिया (बैल) होते थे वही लक्खी बनजारा कहलाता था। एक ही समय में कई-कई लक्खी होते थे।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यह तालाब लक्खी बनजारा से भी पूर्व का है। चिन्तन करने पर विदित होता है कि यह तालाब किसी अज्ञात ऋषि की तपस्थली रही है क्योंकि प्रसिद्ध विश्वामित्र आश्रम (गंगोल तीर्थ) यहां से केवल 10 किलोमीटर दूर है। यह भी कभी जनस्थान का भाग रहा है। इसी प्रकार खरखौदा-फफूंडा-काली वनी भी इसके समीप ही है। अतः यह अवश्य ही उस काल का रहा होगा।

लगभग 400 वर्ष पूर्व यहां पर एक साधु ने तपस्या की थी। उन्होंने यहीं समाधि ली। उनकी स्मृति स्वरूप यहां समाधि बनी है। उन्हें सिद्ध बाबा के नाम से जाना जाता है।

सन् 1857 ई. में गंगोल गांव निवासी एवं साधु न्यादर नाथ यहां भगवत भजन में लगे तो भज्जन ग्राम के सुबराती खां उनके सेवादार हो गये। उन्होंने यहां पर एक शिव मन्दिर एवं कुएं का निर्माण भी कराया। कुछ असामाजिक तत्वों ने रात्रि में दोनों पर घातक हमला किया जिसमें साधु बच गये और सुबराती खां परलोक गमन कर गये।

समीपस्थ गांव मछरी के अधिकांश मुस्लिम तीतवाल गोत्री त्यागी हैं। ये औरंगजेब गर्दी में मुसलमान बने थे। यहां पर डिडौली, महमूदपुर, हुमायूंपुर, सिमावती तथा फतेहपुर आदि आठ गांव तीतवाल त्यागियों के हैं। मछरी की स्थापना वर्तमान निवासियों के बुजुर्ग सैफू त्यागी ने की थी। इनके द्वारा गढ़ी के अवशेषों के रूप में लुप्त होती हुई नींव को आज भी देखा जा सकता है। सैफू ने आर-पार की कुश्ती में गढ़ाना गांव के पहलवान को जान से मार दिया था। कहा जाता है कि इन्हीं के चार बेटों ने गंगा के किनारे तक मछरी-गोरा अटसैनी तथा वेट तक जमींदारी की थी।

बनजारा कुआं

मेरठ-हापुड़ मार्ग पर हापुड़ से सटा हुआ गांव है असौड़ा। गांव वाले बताते हैं कि असौड़ा हापुड़ से भी प्राचीन है। यह गाजियाबाद जनपद का सबसे बड़ा गांव है। हापुड़ का प्रसिद्ध पक्का बाग एवं चण्डी मन्दिर कभी असौड़ा का एक मोहल्ला था।

हापुड़-मोदीनगर मार्ग पर हरिजन कॉलोनी के बीच से निकलता हुआ एक दस्तोई (ग्राम) मार्ग है। इसी मार्ग पर कॉलोनी से लगभग एक किलोमीटर दूर है एक प्राचीन एवं नष्ट प्राय कुआं। क्षेत्रीय लोग इसे बनजारे का या बांय वाला कुआं कहते हैं। उनके अनुसार इसका निर्माण किसी बनजारे (लक्खी बनजारे) ने कराया था। परन्तु पुरातात्विक दृष्टि से यह बात गलत प्रतीत होती है। क्योंकि यह शिल्प बनजारों से भी प्राचीन है। ऐसा ही एक कुआं मुझैड़ा गढ़ी (देखें बाय वाला कुआं) में प्राप्त होता है जो लगभग सन् 1100 के आस-पास का है। बनजारे ने नहीं तो किसने बनाया यह कुआं? कुएं के निर्माण के विषय में इतिहास एकदम मौन है। लेकिन अधिक खोजने पर ज्ञात होता है कि कुएं से कुछ दूरी पर 'जसरूपनगर' नामक एक गांव था जो पलट गया अर्थात् ध्वस्त हो गया। यहां ऊंचा टीला सा बन गया। बाद में उसे भी समतल कर कृषि भूमि बना दिया गया। बुजुर्ग ग्रामीण बताते हैं कि खुदाई में यहां पर अनेक लोगों को धन प्राप्त हुआ है। असौड़ा निवासी मुल्ला मुनफात एवं एक वृद्ध कालूराम पहलवान बताते हैं कि हमारे सामने ही यहां के रामशरण नामक व्यक्ति को खुदाई में स्वर्ण मुद्राओं का एक घड़ा मिला। घर आ कर उसने खोला तो उसमें एक सर्प भी था। सर्प ने उसे डस लिया और वह मर गया। स्वर्ण दूसरे लोगों का प्राप्त

हुआ। यह जंगल अभिलेखों में आज भी जसरूपनगर के नाम से अंकित है।

यह कुआं उसी गांव के मालिक द्वारा निर्मित है। किसी समय यह गांव काफी साधन सम्पन्न था। तैमूरलंग ने अपने दोआब विजय अभियान (सन् 1398 ई.) में अनेक गांवों को मिटाने के साथ ही जसरूपनगर को भी मिट्टी में मिला दिया। जो बचे वे दूर भाग गये। इसका राजा या ज़मींदार यशस्वरूप या जसरूप होगा जिसके नाम पर यह जसरूप नगर नाम से विख्यात हुआ। यह नगर निश्चित रूप से प्राचीन रहा होगा एवं शिल्प की दृष्टि से कूप का निर्माण सन् 1000 ई. के लगभग रहा होगा।

बाय वाले कुएं के सन्दर्भ में लिखा था कि यहां बाय का रोग ठीक होता है। इसीलिए इसे बाय का कुआं कहते हैं। लेकिन यह धारणा मिथ्या प्रतीत होती है क्योंकि बाय वाले कुएं अन्य स्थानों पर भी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से बावड़ी वाले कुएं को अपभ्रंश रूप में बाय (बाव) वाला कहते हैं। यह कुआं अति विशाल एवं बावड़ी युक्त है। इस समय यह टूट-फूट चुका है एवं जंगली वनस्पति का इस पर पूर्ण प्रभुत्व है।

बागपत जनपद के तालाब

सेठों का तालाब

वर्तमान बागपत जनपद को महाभारतकालीन एवं उससे भी पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता का उत्थान-पतन देखने एवं उसके स्मृति चिन्हों को आज तक संजोये रखने का गौरव प्राप्त है। आज भी इसके गर्भ से उस काल के अनेक अवशेष प्राप्त होते रहते हैं। महाभारत काल में इसका नाम वृकप्रस्थ था। पाण्डवों ने दुर्योधन से जो पांच गांव मांगे थे उनमें बागपत प्रथम था। दिल्ली-सहारनपुर मार्ग पर वन्दना चौक से एक रास्ता यमुना तक चला गया है जिसे कोर्ट रोड कहते हैं। कोर्ट रोड पर नगर पालिका कार्यालय के पीछे की ओर जिला पंचायत भवन के समीप है नगर पालिका का जल-कल कार्यालय एवं पानी की टंकी। इससे एकदम सटा है एक पुराना तालाब जिसे सेठों का तालाब कहा जाता है। सेठों का तालाब क्यों कहा जाता है? आईये, इसे इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते हैं।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बिजरौल गांव के क्रांतिकारी योद्धा बाबा शाहमल का सिर काटने के उपहार स्वरूप लोनी के दरोगा करम अली को बागपत की नवाबी दी गई (स्वाधीनता आंदोलन और मेरठ; लेखक - आचार्य दीपांकर)। इसमें पांच गांव थे।

उस समय यहां के शादीराम पर आस-पास के तीस गांव का जमींदारा था। नगरपालिका कार्यालय के सामने अनाज मण्डी हुआ करती थी। सेठों द्वारा निर्मित उसका ऊंचा एवं विशाल द्वार आज भी लगभग पूर्ववत है। तालाब के पास जहां आज एक विद्यालय चल रहा है वहां पर मण्डी में अनाज ढोकर लाने वाले पशु एवं उनके मालिक नौकर-चाकर आदि विश्राम करते थे। उनकी पानी की आवश्यकता के लिए सेठ शादीराम जैन अथवा उनके किसी बुजुर्ग ने इस तालाब का निर्माण कराया था। लाला शादीराम जैन के एक पुत्र प्यारे लाल हुए। प्यारे लाल के दो पुत्र विश्वम्भर (विसम्बर) सहाय व मिट्ठन लाल हुए। विश्वम्भर सहाय के केवल एक पुत्री मैनावती हुई। अपना वंश चलाने के लिए विश्वम्भर सहाय ने अपने दामाद आशाराम (निवासी दिल्ली) को अपने पास रख लिया। इस प्रकार शादीराम जैन के जमींदारे के मालिक आशाराम बने। आशाराम के चाचा जवाहर लाल के केवल एक लड़की थी। अतः जवाहर लाल ने भी अपनी सम्पत्ति की वसीयत आशाराम को कर दी।

अब यह परिवार तो ईश्वरेच्छा से फल-फूल रहा है लेकिन तालाब खण्डहर होकर समाप्ति की ओर अग्रसर है। नगरपालिका और उपरोक्त सेठ परिवार के वंशज सुरेश चन्द जैन के बीच तालाब के स्वामित्व को लेकर मुकदमा चल रहा है। तालाब की बेशकीमती भूमि की तो सभी को चिन्ता है लेकिन तालाब के अस्तित्व की किसी को नहीं। (सुरेश चन्द जैन पुत्र स्व. आशाराम जैन से साक्षात्कार के आधार पर)। नगर पालिका इस विषय में कुछ भी बोलने को तैयार नहीं है।

राम ताल

बागपत-शामली मार्ग पर लगभग दोनों के मध्य में है गांव किशनपुर बराल। पहले किशनपुर एवं बराल दो पृथक-पृथक गांव थे। किशनपुर बड़ा गांव था तो बराल मात्र कुछ परिवारों का। विधर्मी बराल को अत्यधिक सताने लगे तो उन्होंने किशनपुर वालों से सहायता मांगी। किशनपुर वालों ने उन्हें अपने गांव के बाहरी भाग में अपने साथ बसा लिया तो वह बराल और समस्त गांव किशनपुर बराल के नाम से जाना जाने लगा। इसी गांव में सड़क के एकदम किनारे है 'राम ताल'।

अष्ट भुजाओं वाला यह राम ताल हम जैसे व्यक्तियों को सुखानुभूति देता है किन्तु ग्रामवासी इसके अतीत से एकदम अनभिज्ञ हैं। यहां तक कि तालाब पर स्थायी रूप से रहने वाले साधु-महात्मा भी इसके विषय में कुछ नहीं जानते। मैंने अनुभव किया कि जानते तो सभी हैं लेकिन बताता कोई नहीं। क्यों? प्रथम मिलन पर पप्पन पुत्र कटार सिंह ने कहा कि यहां के पूर्व प्रधान ने यहां के इतिहास की एक पुस्तिका लिखी है। मैं उपलब्ध करा दूंगा लेकिन दो बार जाने, कम से कम एक माह तक लगातार फोन करने और लेखक की तलाश में ाामली की गलियों में भटकने के पश्चात् भी वह पुस्तिका प्राप्त नहीं हो पाई। पप्पन के अनुसार उसने दी नहीं। अब क्या कहें इसे? अस्तु

यह राम ताल दो एकड़ में है। इसमें प्राचीन महाभारतकालीन (लगभग डेढ़-दो फीट लम्बी) से लेकर लखोरी (बहुत छोटी) एवं आज तक की ईंटें लगी हैं। एक बार नींव की गहराई जानने के लिए इसकी खुदाई की गई तो लगभग 15 फीट गहरा खोदने पर भी नींव का तल दिखाई नहीं दिया। खुदाई में विष्णु भगवान एवं देवी की प्रतिमा प्राप्त हुई जोकि यहां मन्दिरों में स्थापित हैं। ये मूर्तियां हड़प्पा (या खजुराहो) शैली में निर्मित हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह तालाब एवं स्थान महाभारतकालीन है। महाभारत काल में पहुंचने पर ज्ञात होता है कि महाभारत का युद्ध स्थल 'कुरुक्षेत्र' कुरु राज्य का ही एक विशाल भू-भाग था। दोनों ओर की युद्ध संचालक समिति ने इस युद्ध स्थल का पूर्वी किनारा यमुना को मानकर उसके पूर्वी तट के पास शिविर लगाने का निश्चय करके इसे युद्ध क्षेत्र से बाहर कर दिया। युद्ध के पश्चात् रात्रि में इन शिविरों में कोई भी आ जा सकता था। यहां कोई किसी का शत्रु नहीं था। प्रातः युद्ध के लिए वे युद्ध स्थल में चले जाते थे। ये शिविर भी अत्यधिक व्यवस्थित विधि से बनाये गये थे। जिस प्रकार आज किसी बड़ी रैली आदि के लिए स्थल का नाम पी. सी. जोशीनगर, नेहरूनगर या गांधीनगर रख लिया जाता है तथा दूर से आये भागीदारों के शिविर समूहों के नाम विवेकानन्द नगर व गुरुजी नगर आदि रख लिये जाते हैं उसी प्रकार उस समय भी शिविर समूहों के नाम कृष्ण नगर, कर्ण नगर, श्याम नगर तथा शल्य नगर आदि रखे गये थे। पाण्डवों ने अधिकांश नगरों के नाम भगवान कृष्ण के नाम पर रखे जैसे श्यामवाली (शामली) कृष्णपुर (किशनपुर) आदि। बाद में अपभ्रंश होकर उनके नाम बदल गये। इस प्रकार यह किशनपुर बराल उस समय 'कृष्णपुर' नाम से बसाया गया शिविर गांव था। चूंकि पाण्डव धर्म से सम्बद्ध थे इसलिए उन्होंने यहां पर तालाब के साथ-साथ प्रतिदिन अग्निहोत्र करने के लिए एक हवन कुण्ड का निर्माण

बागपत जनपद के किशनपुर बराल में मौजूद प्राचीन राम ताल

भी कराया। लेकिन तालाब का नाम 'राम तालाब' क्यों कृष्ण ताल क्यों नहीं? सम्भवतः भगवान कृष्ण ने कभी पूर्व में राम रूप में यहां पदार्पण किया हो अथवा राम को मान देने के लिए इसका नाम 'राम-ताल' रख दिया हो। वैसे भी राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं है। सम्भवतः यह 'राम नाल' तकनीक से निर्मित हो।

राम ताल के समीप ही एक छोटा कच्चा तालाब है जो यज्ञ कुण्ड के रूप में जाना जाता है। उस यज्ञशाला में प्रतिष्ठित कृष्ण भगवान आदि की प्रतिमाओं को आक्रमणकारियों ने तालाब में फेंक दिया जो खुदाई में प्राप्त हुई। विदेशी अंग्रेजी शासन में तो यह नहर से भरा जाता था परन्तु स्वराज्य में यह सूखा पड़ा है। कैसी विडम्बना है?

आज भी ग्रामीणों में इसकी बहुत मान्यता है। यद्यपि यह बिल्कुल सूखा पड़ा है परन्तु न तो ग्रामीण इसमें कूड़ा कचरा ही डालते हैं और न ही इसमें गंदा पानी आने देते हैं। यहां पर रहने वाले साधुओं ने तालाब की मरम्मत करा दी है। पानी का अभाव तो है लेकिन तालाब बिल्कुल ठीक है। पीने के पानी के लिए यहां एक प्राचीन कुआं एवं पूजा स्थल के रूप में मन्दिर विद्यमान है। इसमें कोई शक नहीं कि किसी समय यह तालाब अलौकिक रहा होगा।

हिण्डन झील एवं बाल्मीकि आश्रम

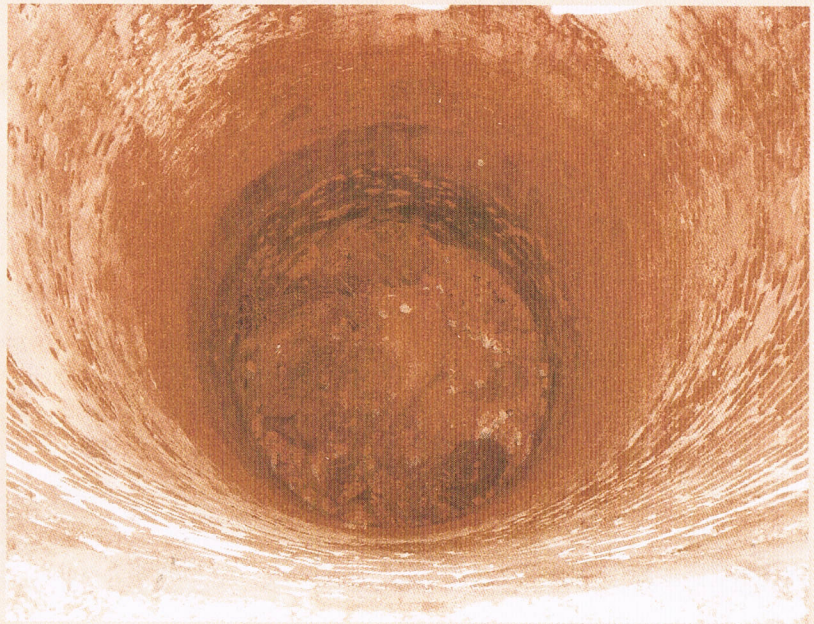

बागपत जनपद के बालैनी में हिण्डन झील के निकट मौजूद जीर्ण-शीर्ण अवस्था में एक प्राचीन कुआं

मेरठ-बागपत मार्ग पर बालैनी में ब्रह्मा की पुत्री हरनन्दी (हिण्डन) के पश्चिमी तट पर मुख्य मार्ग से लगभग डेढ़ किलोमीटर के सम्पर्क मार्ग पर अवस्थित है बाल्मीकि आश्रम अथवा लव-कुश जन्मस्थली। इसके ठीक सामने है विशाल झील। झील को बुजुर्ग लोग हिण्डन झील के नाम से क्यों पुकारते हैं? कहा जाता है कि किसी समय जब हिण्डन नदी में अधिक पानी होता था तो वह अत्यधिक चौड़ा विस्तार लेकर चलती थी। उस समय हिण्डन यहां से होकर बहती थी जो आगे जाकर घूमकर वर्तमान नदी की धारा के स्थान पर आ जाती थी। धीरे-धीरे जल कम होता गया, नदी सिकुड़ती गई, स्वार्थ ने नदी के किनारे बांध दिये और नदी सीमित हो गई तो नदी का यह पुराना स्थान झील में परिवर्तित हो गया। लेकिन अब तो झील भी सूख गई है। कुछ दिनों में सूखी झील भी समाप्त हो जाएगी।

यहां कभी ऊंचे टीले थे। ऐसे ही एक ऊंचे टीले पर स्थित है रामायण कालीन ब्रह्मर्षि बाल्मिकी की तपस्थली या राम के

पुत्र लव-कुश की जन्मस्थली। कौन थे यह बाल्मीकि ऋषि? दक्ष प्रजापति के अनेक पुत्रों में से एक पुत्र थे 'प्रचेता'। इन्हीं प्रचेता के पुत्र थे 'रत्नाकर'। रत्नाकर कुसंगति में पड़कर अमानवीय कृत्य करने लगे तो ब्रह्मा ने नारद जी के द्वारा रत्नाकर को मानव जीवन के लक्ष्य का बोध कराया। नारद के इंगित मात्र से ही रत्नाकर के संस्कार जागृत हो उठे। अज्ञान का अन्धकार मिट गया। घोर तप करने लगे। शरीर पर दीमक ने अपने बिल बना लिये। ब्रह्मा जी ने प्रकट होकर बाल्मीकि नाम और आशीष दिया तो रत्नाकर बाल्मीकि नाम से प्रसिद्ध हो गये।

ब्रह्मा जी के परामर्श पर बाल्मीकि ने बारह वर्षों तक चित्रकूट में रहकर भगवान राम की लीलाओं का परोक्ष-अपरोक्ष रसास्वादन किया। बाद में ब्रह्मा जी के निर्देश या अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा के आधार पर वे पंचतीर्थ के ब्रह्मतुंग आश्रम (वर्तमान आश्रम) में आकर तप करने लगे। लव-कुश ने यहीं पर जन्म लिया। लाक्षागृह वाले कृष्णदत्त ब्रह्मचारी के शरीर में प्रविष्ट शृंग ऋषि की आत्मा ने अपने प्रवचन में इसकी पुष्टि के साथ-साथ इसे अत्यधिक पावन स्थान बताया है। कहा जाता है मार्गशीर्ष शुक्ला तीज को लव-कुश का जन्म हुआ था इसलिए इस दिन यहां विशाल मेला लगता है। यहां का पंचमुखी शिवलिंग महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय है। दूर-दूर से आकर दर्शनार्थी अपने को धन्य मानते हैं। यहां पर एक कुएं सहित कुछ निर्माण मराठा काल का है तो खुदाई में महाभारतकालीन प्राचीन ईंटें तथा मूर्तियां भी निकलती हैं। अब यहां के महन्त स्वामी लक्ष्यदेवानन्द के नेतृत्व में आश्रम की देख-रेख के लिए समिति का पंजीकरण करा लिया गया है।

यह बाल्मीकि आश्रम वह स्थान है जहां राम ने लोकापवाद से बचने के लिए सीता को वनवास में भेजा था। लव-कुश का जन्म भी यहीं पर हुआ था। बाल्मीकि रामायण के अनुसार -

त्यक्त्वा शीघ्रम रथेन त्वम् पुनरामहि लक्ष्मणः।
वक्ष्यसे यदि वा किंचित्तदा माम् हत्वा नसि ।। 1।।

बागपत जनपद के बालैनी में मौजूद लव-कुश आश्रम का मुख्य द्वार

लोकापवादस्तु महान सीतामाश्रममेऽभवत्।
सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेः आश्रमन्ति के ।।2।।

प्राचीन काल से ही आश्रम विवादों में घिरा रहा है। सन् 1930 ई. में शिकार खेलने को मना करने पर एक अंग्रेज ने स्वामी गोदाभाई दास की गोली मार कर हत्या कर दी।

सन् 1982 ई. में कुछ अराजक तत्वों ने स्वामी ईश्वर दास को उसके बालों द्वारा ही तख्त से बांधकर तेल छिड़क कर आग लगा दी। सन् 1950 ई. में फिर एक महात्मा का कत्ल हो गया। सन् 1955 ई. में बाल्मीकि समाज ने हमला कर दिया। मुकदमा चला और न्यायालय ने आश्रम परिसर में बाहरी हस्तक्षेप एवं कार्यक्रमों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। स्वामी लक्ष्यदेवानन्द बताते हैं कि सन् 2004 ई. में भाजपा नेता रामचन्द्र बाल्मीकि ने अपने समाज के साथ मिलकर बहुत नाटक किया। अब भक्तों एवं स्थानीय निवासियों के सहयोग से काफी विकास किया जा चुका है। नाम न बताने की शर्त पर एक ग्रामीण ने बताया कि काम तो ग्रामीण कराते हैं लेकिन शिलापट्ट पर्यटन विभाग अपने नाम का लगा देता है। तो सरकारी अनुदान कहां जाता है?

जनहित
फाउंडेशन

डी-80, शास्त्रीनगर, मेरठ (उ.प्र.)
फोन : 0121-2763418, 4004123
ईमेल : janhitfoundation@gmail.com
वेबसाइट :www.janhitfoundation.in

जनहित फाउंडेशन समाजहित में प्रयासरत एक गैर-सरकारी संस्था है। 1998 में स्थापित यह संस्था स्थाई विकास की जरूरत हेतु दबाव समूह बनाकर व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार में संलग्न है। संस्था का मत है कि वर्तमान में प्राकृतिक संपदा को हो रहे लगातार नुकसान को जनसहभागिता द्वारा ही रोका जा सकता है। यह संस्था देश में ख्याति प्राप्त गैर-सरकारी व सरकारी संस्थाओं के साथ समन्वय स्थापित कर पर्यावरण रक्षार्थ ज़मीनी स्तर पर समाधान खोजने में जुटी हुई है। जनहित फाउंडेशन पर्यावरण संबंधी नीतिगत मसलों पर भी देश में अपना एक अहम् स्थान रखती है। मुख्य रूप से युवाओं द्वारा संचालित यह संस्था पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जल संरक्षण, संवर्धन एवं जैविक खेती के क्षेत्र में कार्यरत है। संस्था को मेरठ जनपद में प्राकृतिक जल स्रोतों का विस्तृत अध्ययन कर राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त हुई है। जनहित फाउंडेशन द्वारा देश का दूसरा रेन सेंटर मेरठ में स्थापित कर समाज में जल-जागृति लाने का एक ठोस प्रयास किया गया है। रेन सेंटर में साधारणजन को जल साक्षर बनाने हेतु विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जाता है।

रसायनिक खादों पर आधारित खेती को त्यागने व जैविक खेती को किसानों के बीच लोकप्रिय बनाने में जनहित फाउंडेशन किसानों के साथ स्तर पर कार्य कर रही है। कृषि संबंधी सरकारी नीतियों की सकारात्मक आलोचना कर किसानों के अधिकारों के लिए प्रयत्नशील रहना संस्था का प्रमुख कार्य है। जैविक खेती के माध्यम से संस्था का प्रयास है कि हरित क्रान्ति के दुष्परिणामों से बंजर हो चली कृषि भूमि को दोबारा हरा-भरा बनाया जाए। जनहित फाउंडेशन किसानों को जैविक उत्पाद का बाजार दिलाने का भी कार्य करती है। इससे किसानों की आय में काफी वृद्धि हो रही है। इसी कड़ी में संस्था द्वारा ऑर्गेनिक आहारम नामक एक जैविक उत्पाद केन्द्र की स्थापना भी मेरठ में की गई है जहां से उपभोक्ता इन्हें खरीद सकते हैं। संस्था कई अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से पर्यावरणीय संबंधी मुद्दों पर भी कार्य करती है। जनहित फाउंडेशन, आइफॉम, जर्मनी की भी सदस्य संस्था है।

जनहित फाउंडेशन द्वारा कई पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है। संस्था द्वारा तैयार की गई अनेक *डाक्यूमेंटरी* फिल्में (वृत्तचित्र) देश में स्वयंसेवी संस्थाओं व जनसंगठनों के बीच लोकप्रियता हासिल कर चुकी हैं। इसके अलावा किसानों के हितार्थ एक हिन्दी भाषा का मुखपत्र 'जनसहयोग' का भी प्रकाशन संस्था द्वारा किया जाता है। इन प्रकाशनों का मकसद साधारणजनों के बीच पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करना, उन्हें पर्यावरण क्षेत्र की नई-नई जानकारियों से अवगत कराना व उन्हें उनके अच्छे भविष्य के प्रति सजग बनाना है।